आत्मनोमोक्षार्थंजगद्धितायच

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्दभावधाराकी प्रमुख[illegible]

वर्ष—१६ मार्च, अप्रैल—2000 अंक—३-४

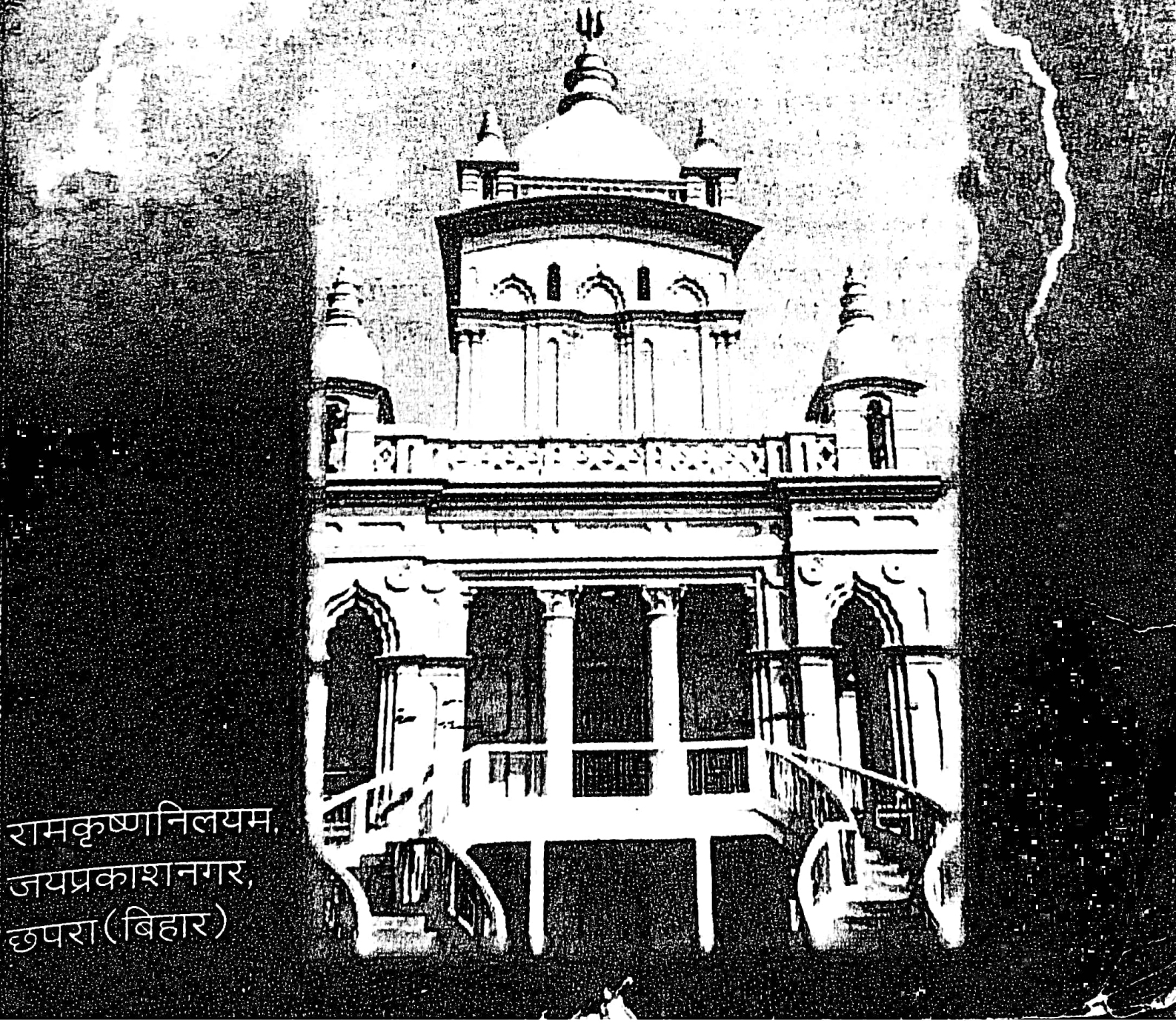

रामकृष्णनिलयम,
जयप्रकाशनगर,
छपरा (बिहार)

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ

रामकृष्ण नगर विद्यापीठ, देवघर–814 112 (बिहार)

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के पावन पदरज से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र, ज्योतिर्लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा संचालित प्रथम आवासीय शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित आज से 77 वर्ष पूर्व स्थापित यह शिक्षण संस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय परमाध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत् स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होंगे, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

अपने विगत 77 वर्षों की यात्रा के दरम्यान इस विद्यापीठ ने अपनी उपलब्धियों की दृष्टि से एक शताब्दी से अधिक वर्षों की यात्रा की है। "बाल कल्याण के क्षेत्र में इसके उत्कृष्ट कार्यों के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार" से इसे सम्मानित करना एक प्रमाणक है। इसी से माध्यमिक शिक्षा की केन्द्रीय परिषद् (सी०बी०एस०ई०) नई दिल्ली ने इसे स्थायी सम्बद्धता प्रदान की है।

विद्यापीठ में (V से X वीं कक्षा तक) कुल 307 छात्र हैं। इसके आवासीय खण्ड में 12 धाम (प्रखण्ड) हैं जो कि रामकृष्ण के शिष्यों के नाम पर रखे गये हैं।

अब आपको यह जानकर निश्चय ही प्रसन्नता होगी कि विद्यापीठ अप्रैल 2000 ई० से "+2 कक्षाएँ" (वर्ग 11 और 12) का शुभारंभ करने जा रहा है। इसकी आवश्यक संरचना के विकास के लिए प्रायः 60 लाख रुपयों की आवश्यकता होगी—

- छात्रावास—परिसर का निर्माण
  (छात्रावास, प्रार्थना-भवन, भोजनालय आदि) — 54 लाख रुपये
- उपस्कर, प्रयोगशालाओं का उन्नतिकरण
  (भौतिक शास्त्र, रसायण शास्त्र, जीव-विज्ञान और कंप्यूटर) — 6 लाख रुपये

कुल 60 लाख रुपये

अतः हम अपने मित्रों और भक्तों से इस उत्कृष्ट प्रयास के लिए उदारता-पूर्वक सहायता करने का अनुरोध करते हैं।

प्रभु सेवा में आपका,
स्वामी सुवीरानन्द
सचिव

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएँ।
2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान आयकर की धारा 80 (G) के अंतर्गत आयकर से मुक्त है।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

स्वामी निखिलेश्वरानन्द, सचिव
रामकृष्ण विवेक, पोरबन्दर
का सस्नेह उपहार

विवेक - शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

मार्च-अप्रैल, २०००

सम्पादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक

वजमोहन प्रसाद सिन्हा

वार्षिक६०/- वर्ष १९ अंक ३-४ एक प्रति ५/-

आजीवन ग्राहकता शुल्क (२० वर्षों के लिए) ७००/-

सम्पादकीय कार्यालय
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा-841301 (बिहार)
दूरभाष : (06152) 22639

इस अंक में

१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है १

२. विनय
-डॉ० केदारनाथ लाभ २

३. चलो मन रामकृष्ण की ओर
(सम्पादकीय सम्बोधन).....३

४. पुनर्जन्म
-स्वामी रंगनाथानन्द ८

५. पुरुषार्थ और भगवत कृपा
-ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द १२

६. दीन दुखियों के भगवान
-स्वामी नित्यज्ञानानन्द २४

७. राम का व्यक्तित्व
-श्री रामकिंकर उपाध्याय २६

८. स्वामीजी की अमर कहानी ३२
-स्वामी शशांकानन्द

९. चलिए, मायावती घूम आयें
-डॉ० निवेदिता बक्शी ३६

१०. समाचार एवं सूचनाएँ ४८

ॐ उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत ॐ

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो !

विवेक - शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख

हिन्दी मासिकी

वर्ष १६ मार्च-अप्रैल २००० अंक ३-४

इष्टदेव का हृदय–कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

श्री रामकृष्ण ने कहा है

❖ जो लोग बिलकुल कुछ न कर सकें वे दोनों समय भक्तिपूर्वक दो बार प्रणाम करें। वे भी तो अन्तर्यामी हैं, वे समझते हैं कि ये क्या करते हैं। तुम्हें कितने ही काम हैं। तुम्हें पुकारने का समय नहीं, तो उन्हें आमुख्तारी दे दो; परन्तु अगर उन्हें पा न सके, उनके दर्शन न कर सके, तो कुछ न हुआ।

❖ अहैतुकी भक्ति-तुम इसे अगर साध्य कर सको तो अच्छा हो। 'मुक्ति, मान, रुपया, रोग अच्छा होना, कुछ नहीं चाहता-मैं बस तुम्हें चाहता हूँ।' इसे अहैतुकी भक्ति कहते हैं। बाबू के पास कितने ही लोग आते हैं-अनेक कामनाएँ करते हैं, परन्तु यदि कोई आदमी आता है जो कुछ नहीं चाहता, और केवल प्यार करने के लिए ही बाबू के पास आता है तो बाबू भी उसे प्यार करते है।

❖ स्त्रियों के सम्बन्ध में खूब सावधान रहे बिना ब्रह्मज्ञान नहीं होता, इसीलिए गृहस्थी में उसकी प्राप्ति कठिन बात है। चाहे जितने बुद्धिमान क्यों न बनो, काजल की कोठरी में रहने से स्याही जरूर लग जायगी। युवतियों के साथ निष्काम मन में भी कामना की उत्पत्ति हो सकती है।

❖ सत्य वचन के प्रति दृढ़ निष्ठा होनी चाहिए। सत्य को दृढ़ता से पकड़े रहने पर ईश्वर का

विनय

डॉ० केदारनाथ लाभ

कि मुझ पर दया कर, दया कर, दया कर।।

ये माना कि मुझ में न साधन–भजन है,
दिवा–रात्रि चंचल चपल मूढ़–मन है;
महा मोह के पंक में मैं फँसा हूँ,
चरण में शरण दो, गिरे को उठाकर ।।१।।

जगत के सफर में कहीं खो गया हूँ,
अकेला भरी भीड़ में हो गया हूँ;
तुम्हें तो नहीं मैं पकड़ पा सकूँगा,
तुम्हीं नाथ मुझको पकड़ लो दया कर।।२।।

सुना है कि तुम हो अकारण दयामय,
कुटिल कामियों के लिए हो वराभय;
अगर नाथ मुझको न अपना सके तो,
तुम्हारी ही महिमा मिटेगी गदाधर।।३।।

विषय–वासना में रहा लिप्त जीवन,
नहीं तृप्त किंचित् हुआ भोग से मन,
तिमिर–ताल में डूबता जा रहा हूँ,
उबारो–उबारो मुझे सारदेश्वर।।४।।

नहीं जानता धारण ध्यान पूजा,
तुम्हारे सिवा किन्तु मेरा न दूजा;
तुम्हारे दरस को तरस मैं रहा हूँ,
सुनो यह विनय हे सदय स्नेह–सागर,

ये बिनती मेरी सुन लो ठाकुर कृपा कर,
कि मुझ पर दया कर, दाया कर, दया कर।।५।।

सम्पादकीय सम्बोधन

चलो सब रामकृष्ण की ओर

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

आज से एक सौ चौसठ वर्ष पूर्व भारत की मिट्टी पर एक महा विलक्षण, एक परम चमत्कारपूर्ण घटना घटी थी। 1836 ई० की 18 फरवरी, फाल्गुन शुक्ल द्वितीया। शिशिर की प्राणलेवा ठंढ समाप्त हुई। शीतल मंद समीर बहने लगा। पेड़ों में नयी अरुणाभ कोंपलें फूटने लगी। कलियाँ चटखने लगीं। भौंरे गूँजने लगे। चारो और सौरभ–सुगंध से भरकर धरती महमहा उठी। सूरज अपनी सुनहली किरणों के अबीर–गुलाल लुटाने लगा। नदियों–निर्झरों की जल–धाराओं से संगीत की लहरियाँ ध्वनित होने लगी। कोयल कूकने लगी। आम और महुओं के वृक्षों में मादकता भरी मंजरियाँ फूटने लगीं। स्वर्ग में पितृगण मुदित होने लगे और देवगण नृत्य करने लगे।

यह स्वाभाविक ही था। उस दिन भारत की मिट्टी पर, बंगाल के एक ठेठ ग्राम कामारपुकुर (कामारि पुष्कर) में; एक परम देवता का, परमात्मा का, साक्षात् ईश्वर का, अवतरण जो होना था ! उनके अवतरण का सारा परिवेश ही मानो सूचित कर रहा था कि धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक दृष्टि से पराभव के शीत से भरे भारत के गहन अंधकार में, एक नव वसंत का आगमन होने वाला है, एक अभिनव चन्द्रोदय होने वाला है, जो भारत में ही नहीं, समग्र विश्व में एक नयी जीवन दृष्टि, एक अभिनव धर्म–जीवन, एक नूतन चेतना, एक रासायनिक संस्कृति की मनोरम शीतल किरण विकीर्ण कर विश्व–मानवता का सनातन–ताप हरने में सफल–समर्थ होगा। और अवतरण हुआ। अवतरण हुआ उस दिन गदाधर का–भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का जिनकी पूजा–अर्चना कर आज विश्व के असंख्य नर–नारी अपने चित्त में शीतल शान्ति और परम विश्राम का अनुभव करते हैं।

आप में से अनेक मित्र यह प्रश्न कर सकते हैं कि आज से १५० वर्ष पूर्व अवतरित हुए किसी परम पुरुष का स्मरण कर हमें क्या लाभ? क्यों हम अतीत के इन महापुरुष का आज ध्यान करें ? इससे हमें क्या मिलने वाला है ? हम आज जिन समस्याओं से घिरे हुए हैं उनके समाधान में वे परम पुरुष कौन सी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे ? क्या प्रयोजनीयता है हमारे जीवन के जटिल, गुत्थियों से भरे संदर्भ में उनकी ?

आप यह भी पूछ सकते हैं कि श्रीरामकृष्णदेव ने प्रत्यक्ष रूप से भारत की आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक समास्याओं के सम्बंध में कुछ भी नहीं कहा। हम आज भी अशिक्षा, जातिवाद की संकीर्णता, खाद्यान्न में मिलावट, हिंसा, भ्रष्टाचार और कितने ही अन्य प्रकार की कुरीतियों तथा विसंगतियों से घिरे हुए हैं। इन विषयों में श्रीरामकृष्ण के विचारों से कौन–सी प्रेरणा हमें मिल सकती है ? हम आज भी निराशा के जिस अंधकार में डुबकर हाहाकार कर रहे हैं उससे मुक्त होने का कौन–सा मार्ग श्रीरामकृष्ण ने दिखलाया है ?

आपके प्रश्न स्वाभाविक होंगे ? हमें निश्चय ही इन पर विचार करना चाहिए।

हमें एक बात का स्मरण रखना होगा। अवतार पुरुष की लीला लोकमंगल और लोक शिक्षा के लिए ही होती है। धर्म (सामाजिक, वैयक्तिक सांस्कृतिक, भौतिक और नैतिक सभी अर्थों में) की ग्लानि को दूर कर उनके सर्वांङ्गीन अभ्युत्थान के लिए ही होती है। वस्तुतः अवतार पुरुष की लीला काफी रहस्पूर्ण एवं गंभीर–गूढ़ अर्थ लिये होती है। वे जिन्हें शब्दों से नहीं

कहते उनकी ओर अपने मौन से या अपने आचरण से संकेत कर देते हैं। उनका अनुकरण कर हम सहज ही अपने को सँवार लेते और धन्यता को उपलब्ध होते हैं।

सूरज किसी को बिस्तर त्यागने के लिए हाँक नहीं लगाता, पुकार नहीं करता। वह तो केवल अपनी अनन्त अजस्र किरणों से पूरब के आकाश में अंधकार की छाती चीरकर जगमगा उठता है। और लो ! इतने से ही सारे विश्व में एक अनन्त ऊर्जा का, निरालस्य का, चेतना का संचार हो जाता है। पक्षी चहचहा उठते हैं। फूल खिल पड़ते हैं। हम बिस्तर छोड़कर अपने कर्मों में लग जाते हैं। सारा जगत् ही कर्म पथ पर दौड़ पड़ता है।

सावन की घटा चुपचाप बरस जाती है। किसी से कुछ कहती नहीं। और लो ! किसान खेतों में हल-बैल लेकर निकल पड़ते हैं-बीज बोने। माली उद्यानों में फल-फूल लगाने लगते हैं। कालिदास मेघदूत लिखने लगते हैं। चंडीदास और विद्यापति सरस गीतों की रचना करने लगते हैं। अजंता और एलोरा की गुफाओं में मनोरम मूर्त्तियाँ और नयनाभिराम चित्र उत्कीर्ण होने लगते हैं। आनन्द की हाट पसर जाती है।

हिमालय अपनी ऊँचाई में मौन खड़ा रहता है। निस्पंद-निःशब्द। और उसका कोई खंड, कोई अंश गल कर बह जाता है। और लो! चमत्कार हो गया। धरती पर गंगा उतर गयी। तरलतर तरंगों वाली गंगा। सींचो अपने सूखे खेतों को। उगाओ हरी-भरी फसल। नहाओ उसमें ऊब-डूब कर। जुराओ अपने पिपासित प्राणों को। पार हो जाओ भव-सागर से। गाओ-'कत सुख-सार पाओल तुअ तीरे।' गंगा कुछ कहती नहीं। वह तो मात्र प्रवाहित होती है।

और संध्या ! एक उदास, शान्त, स्निग्ध, किसी स्वर्ग लोक से बिछुड़ी देवबाला-सी संध्या नीरव-निःस्वर उतरती है और हम सब जगन्माता के विराट् स्नेहांचल में लिपट-सिमट कर शय्या-शायी हो जाते हैं-सभी कर्मों, सभी कोलाहलों, रागी चिन्ताओं से मुक्त होकर।

ऐसा ही होता है महापुरुषों का जीवन। बड़े रहस्य होते हैं उनके आचरणों के, उनकी लीलाओं के। उनमें शब्द कम होते हैं, अर्थ-विस्तार अधिक होता है। ऐसा ही था श्रीरामकृष्ण देव का जीवन। एक शान्त-स्निग्ध, पावन गंगा की धारा के समान-अनवरत प्रवहमान और अनन्त अर्थवान्।

हमारी आज क्या स्थिति है ? हम में अनेक कुरीतियाँ दीख पड़ती हैं उनका मूल कारण यह है कि हम एक उत्तनपाद की संस्कृति में जी रहे हैं। आप सब जानते हैं कि राजा उत्तनपाद की दो पत्नियाँ थीं-सुरुचि और सुनीता। उत्तानपाद सुरुचि को अधिक प्यार करते थे, लेकिन सुनीता की उन्होंने उपेक्षा कर दी थी। सुनीता भी उनकी पत्नी ही थी। उसने राजा से कहा- मैं भी आपकी पत्नी हूँ। फिर मेरी उपेक्षा क्यो ?' उत्तानपाद ने कहा-तुम अगर मेरी धर्मपत्नी हो तो जो मैं कहूँगा, वह करोगी ? सुनीता का उत्तर था-'हाँ, महाराज, अवश्य करुँगी।' तो जाओ, छत पर बैठकर दिनभर कौओं को उड़ाती रहो-उत्तानपाद का आदेश हुआ। हमलोग यह भी जानते हैं कि सुरुचि का पुत्र उत्तम तो राजा का प्रिय था लेकिन सुनीता से उत्पन्न पुत्र वन में तपस्या के लिए धकेल दिया गया था।

क्या हम भी आज उत्तानपाद नहीं हो गये हैं ? क्या हम भी सुरुचि (मनोनुकूल व्यक्ति और वस्तु) पर अधिक ध्यान नहीं देने लगे हैं ? क्या हमारी गोद में भी उत्तम (भौतिक सुख-सुविधा प्रदान करने वाले भोगों के पदार्थ) नहीं विराज रहा है ? क्या हमारी सुनीता (धर्म, नैतिकता और सद्वृत्तियाँ) भी आज छत पर कौए नहीं उड़ा रही है ? सुनीता का पुत्र ध्रुव ही हो सकता है। ध्रुव का अर्थ है-अविचल। यानी प्रेम, करुणा, क्षमा, भक्ति, ज्ञान, विश्वास, चिरन्तन सत्य, परम ऋत, अखण्ड आनन्द का स्रोत, अविनाशी आत्मा और हमारा जानने योग्य आत्मस्वरुप-परमात्म रूप। जहाँ सुनीता ही

उपेक्षित रहेगी वहाँ ध्रुव का स्थान वन में ही तो होगा ! ध्रुव तो सुनीता से ही उत्पन्न हो सकता है। परम सत्य को हम सुनीति से ही पा सकते हैं। लेकिन हमने सुरुचि को प्यार दिया है, सुनीति को तिरस्कार, उत्तम को आलिंगन और ध्रुव को वन-गमन दिया है। स्वभावतः दशा दयनीय हो गयी है।

श्रीरामकृष्णदेव सुरुचि और सुनीता में, भौतिकता और आध्यात्मिकता में, संसार और ईश्वर में किसी एक की उपेक्षा करनानहीं चाहते। हम सब जानते हैं, उन्होंने विवाह भी किया और वैरागी भी बने रहे। संसार में भी रहे और संन्यास में भी रहे। रस और परम आनन्द के सागर में भी तैरते रहे तथा परम त्याग के हिमालय के उत्तुंग शिखर पर भी विराजते रहे। क्या उनके जीवन के इस पक्ष से हम कोई प्रेरणा नहीं ले सकते ? यदि हमें अपने को वस्तुतः सुख ओर शान्ति में रखना है तो जगत और जगदाधार दोनों का तालमेल कर रहना होगा।

आप कह सकते हैं, क्या यह संभव है ? श्रीरामकृष्ण का उत्तर होगा, हाँ अवश्य संभव है। उनका कथन है-'संसार और ईश्वर दोनों बातें एक साथ होना कैसे संभव है?'-चिउड़ा कूटनेवाली स्त्री एक हाथ में ढेंकी की ओखली के भीतर चिउड़ा चलाती रहती है, दूसरे हाथ से बच्चे को गोद में लेकर दूध पिलाती है, साथ ही ग्राहकों के साथ लेन-देन का हिसाब करती जाती है। इस तरह वह एक ही साथ अनेकों काम करती रहती है, पर असल में उसका मन ढेंकी के मूसल की ओर रहता है कि कहीं वह हाथ पर न आ गिरे। इसी प्रकार तुम संसार में रहते हुए सब काम करो, किन्तु सतत् ध्यान रखो कि कहीं ईश्वर के पथ से दूर न चले जओ।' कभी वे कहते हैं-"बदचलन औरत संसार में रहती हुई गृहस्थी के कामकाज में मग्न रहती है, पर उसका मन सदा अपने यार की ओर ही पड़ा रहता है। हे संसारी जीव, तुम भी संसार में अपने कर्त्तव्यों को करते रहो, पर मन सदा ईश्वर में लगाए रखो।" यही है सुरुचि और सुनीति के साथ, संसार और ईश्वर के साथ भौतिकता और आध्यात्मिकता के साथ सम्यक् समन्वय स्थापित कर रहने की शुभ-दृष्टि।

हम आज संकीर्ण जातिवाद के रोग से जिस प्रकार ग्रस्त हैं, उस प्रकार कभी नहीं थे। ऊँच-नीच, अगला-पिछड़ा, ब्राह्मण-हरिजन आदि के भेद-भाव से हमारा समाज जर्जर हो गया है। नेताओं के द्वारा दिया गया कोई समाधान और संविधान कारगर नहीं हो पा रहा है। हम जाति के नाम पर आज लड़ रहे हैं, हत्याएँ कर रहे हैं, संघर्ष कर रहे हैं, नारों और जुलूसों का हंगामा खड़ा कर रहे हैं। चलिए रामकृष्ण की ओर। वे क्या कहते हैं ? उन्होंने एक उपाय सुझाया है। वे कहते हैं-'एक उपाय से जाति-भेद समाप्त हो जायगा। वह उपाय है भक्ति। भक्तों की जाति नहीं होती। भक्ति नहीं होने से ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है, और भक्ति होने पर चाण्डाल चाण्डाल नहीं है। अछूत जाति के लोग भी भक्ति होने पर शुद्ध और पवित्र हो जाते हैं।' यह है उनकी दृष्टि। और उनका आचरण देखें। ब्राह्मण के उच्च कुल में उत्पन्न होकर भी उन्होंने सुनारों के घर में खाना खाया, धनी नामक लुहारिन से अपने उपनयन के समय भिक्षा ग्रहण की, अपने हुक्के से नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) को चिलम पीने को बाध्य किया और अपने लम्बे बालों से मेहतर के घर का पाखाना साफ किया। उनके शिष्यों में ब्राह्मणेतर जाति के ही शिष्य अधिक थे। लाटू जैसा गड़ेरिया भी उनका प्रिय शिष्य था। कैसे जाति-भेद उनके जीवन में गल-पिघल जाता है ? स्वस्थ समाज-निर्माण के लिए यह कैसी मनोरम दृष्टि है, आप स्वयं सोचें।

श्रीरामकृष्ण ने आधुनिक दृष्टि से ऊँची शिक्षा नहीं पायी थी। बल्कि केवल अर्थकरी जो विद्या है उसके प्रति उन्होंने अरुचि भी प्रदर्शित

की। लेकिन शिक्षा के प्रति उनमें अनुराग कम नहीं था। वे कहा करते थे, 'जब तक जीओ, तब तक सीखो।' अथवा 'जो एक विद्या में निपुण हो जाता है उसके लिए ईश्वर प्राप्त करना भी सहज हो जाता है।' अपनी उन उक्तियों के द्वारा वे समाज में पूर्ण शिक्षा का प्रचार ही करना चाहते थे। उन्होंने यहाँ तक कहा कि 'जिन्हें लोक-शिक्षा देनी है उनके लिए सभी शास्त्रों का अध्ययन अपेक्षित है।' इतना ही नहीं उन्होंने लाटू नामक अपने निरक्षर गड़ेरिये शिष्य को अक्षर-ज्ञान कराने की चेष्टा की और चाहा कि लाटू कुछ पढ़-लिख ले। आखिर क्यों ? उनके इस आचरण का संकेत यह था कि हर एक पढ़ा हुआ व्यक्ति अन्य किसी एक को पढ़ाने का कार्य करे। अगर हम इस आदर्श का पालन करते हैं तो बिना अधिक व्यय, श्रम और समय के सारे देश में सामान्य शिक्षा का शीघ्र प्रचार-प्रसार हो जायगा और तभी देश विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति कर सकेगा। महात्मा गाँधी ने श्रीरामकृष्ण के उक्त आचरण में निहित संकेत के मर्म को समझा था और उन्होंने शिक्षा-प्रचार में इस नीति का समर्थन भी किया था।

अब देखें श्रीरामकृष्ण की अर्थ नीति। वे धन को भगवान की सम्पत्ति और धन के स्वामी को भगवान की सम्पत्ति का न्यासी (ट्रस्टी) मानते थे। वे चाहते थे कि धनवान व्यक्ति अपने धन का उपयोग निजी भोग-विलास के उपकरणों को जुटाने में न कर लोक-कल्याण में करें। एक बार काशी जाने के मार्ग में जब वे वैद्यनाथ धाम पहुँचे तो समीप के किसी गाँव के निवासियों की दुर्दशा देखकर उन्होंने माथुर बाबू से कहा-'तुम तो माँ के दीवान हो। इन गरीबों के सिर में सरसों के तेल, शरीर में एक कपड़ा तथा उनके लिए एक शाम भर पेट भोजन की व्यवस्था करो। माथुर बाबू की आनाकानी देखकर उन्होंने कहा-'धत् साला, तुम्हारी काशी मैं नहीं जाऊँगा। मैं इनके ही निकट रहूँगा। इनका कोई नहीं है। इन्हें छोड़कर नहीं जाऊँगा।' तब माथुर बाबू ने सारी व्यवस्थाएँ कीं। कहने का भाव यह है कि यदि समाज के धनी वर्ग के लोग स्वेच्छापूर्वक समाज के दलित-पीड़ित वर्ग के लोगों के प्रति अपने दायित्व को समझें और अपनी सम्पत्ति में गरीबों की भागीदारी को महसूस करें तो वर्ग-संघर्ष की घटनाओं से ही नहीं बचा जा सकता है बल्कि धनियों और गरीबों के बीच की आर्थिक विषमता को भी पाटा जा सकता है। महात्मा गाँधी ने जिस ट्रस्टीशिप की चर्चा की थी उसके मूल में श्रीरामकृष्ण का विचार ही कार्य कर रहा था।

सामाजिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनाचार, दुराचार, काला बाजारी और चीजों में मिलावट की बीमारी आज गहरे रूप में व्याप्त है। अगर हम श्रीरामकृष्ण के पास चलें और उनसे पूछें कि इस बीमारी का क्या इलाज है आपके पास तो वे उत्तर देंगे-सदाचार और सत्य के प्रति निष्ठा। उनका कथन होगा-'जो विषय कर्म करते हैं-ऑफिस का कार्य या व्यवसाय करते हैं-उनके लिए भी सत्य में अधिष्ठित रहना ही उचित है। सत्य ही कलियुग की तपस्या है।' अब यह बड़ी गहरी और अर्थपूर्ण बात है। स्वयं श्रीरामकृष्ण ने सत्य के प्रति आजीवन गहरी निष्ठा दिखायी। हम भी इसका अनुसरण कर ही सामाजिक, राजनैतिक कदाचार मिटा सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण की आशाओं के केन्द्र बिन्दु थे भारत के तरुण। उनकी ही वे पुकार लगाते थे-'अरे, तुम लोग कौन कहाँ हो, आओ।' युवकों के प्रति उनका यह आह्वान बड़ा अर्थपूर्ण था। युवकों को ही त्याग और तप के द्वारा राष्ट्र को समुन्नत करना है। उन्होंने सारे जीवन में सोलह तरुणों को मनुष्य बनाया। सर्वाङ्गपूर्ण मनुष्य। जब नरेन्द्रनाथ ने श्रीरामकृष्ण से समाधि में अपने डूबे रहने की इच्छा प्रकट की थी तो उन्होंने फटकारते हुए कहा था-'छिः छिः कहाँ तो तुम इतने बड़े आधार हो और कहाँ तुम्हारे मुख से

यह हीन बात ! मैं सोचता था तुम एक विशाल वट वृक्ष की भाँति होगे—तुम्हारी छाँव में हजारों हजार लोग विश्राम पाएँगे—ऐसा नहीं कर तुम केवल अपनी मुक्ति चाहते हो।' यह कहकर मानो उन्होंने आज के तरुणों का भी आह्वान किया है—केवल अपनी मुक्ति, केवल अपना भोग या अपने स्वार्थ की सिद्ध की कामना करना सबसे बड़ी हिंसा है। सबसे बड़ा प्रेम है स्वजनों के लिए अपने को उत्सर्ग कर देना, अपनी बलि दे देना। आज के तरुणों को श्रीरामकृष्ण की पुकार का उत्तर देना ही होगा। उत्तर यही है कि शिव हमारे भीतर ही नहीं, बाहर भी हैं। हर पुरुष शिव है, हर नारी उमा। इसी दृष्टि से उनकी सेवा करनी होगी।

महर्षि अरविन्द ने भावी भारत के प्रति श्रीरामकृष्ण के अवदान की चर्चा करते हुए कहा है—"भगवान् श्रीरामकृण देव की उक्तियों एवं उनके सम्बन्ध में पुस्तकें रची गयी हैं, उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन्होंने देश में जिस नूतन भाव का गठन किया है, जिस भाव—राशि ने समस्त भारतवर्ष को आप्लावित कर दिया है, जिस भाव तरंग में मत्त होकर कितने ही युवकों ने अपने जीवन को तुच्छ समझ कर आत्माहुति प्रदान की है, उस भाव की बात उन्होंने कुछ भी नहीं कहीं, सर्वभूतान्तर्यामी भगवान् ने उसे नहीं देखा, इस बात पर कैसे विश्वास करूँ ?

"जिनके पाद—स्पर्श से पृथ्वी पर सत्ययुग का आगमन हुआ है, जिनके स्पर्श से धरणी सुख—मग्ना हुई है, जिनके आविर्भाव से अनेक युगों से संचित तमोभाव का विनाश हुआ है, जिस शक्ति के मात्र सामान्य उन्मेष से दिग्‌दिगंन्त व्यापी प्रतिध्वनि जाग्रत हुई है, जो पूर्ण हैं, जो युग धर्म प्रर्वतक हैं, जो अतीत के सारे अवतारों के समष्टि स्वरूप हैं, उन्होंने भावी भारत को देखा नहीं या उसके सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं, इस बात पर मैं विश्वास नहीं करता।

"हमारा विश्वास है कि जो बात उन्होंने मुँह से नहीं कही उसे वे कार्य रूप में कर गये हैं। वे भावी भारत के प्रतिनिधि को अपने सम्मुख बैठाकर गठित कर गये हैं, इस भावी भारत के प्रतिनिधि हैं स्वामी विवेकानन्द।

"अनेक लोगों को लगता है कि स्वामी विवेकानन्द का स्वदेश प्रेम उनकी अपनी देन है, किन्तु गहरी दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि उनका स्वदेश प्रेम उनके पूज्यपाद गुरुदेव की ही देन है। उन्होंने स्वयं भी अपना कहकर कोई दावा नहीं किया है।"

"श्रीरामकृष्ण उनसे कहते थे—'तुम वीर जो हो, रे।'

"वे जानते थे कि, उनके (स्वामी विवेकानन्द के) भीतर जिस शक्ति का संचार कर वे जा रहे हैं, कालक्रम से उसी शक्ति की उद्‌दीप्त छटा से भारत सूर्य के किरण—जाल से आवृत होगा। हमारे युवकों को भी इसी वीरभाव की साधना करनी होगी। उन्हें बेपरवाह होकर देश का कार्य करना होगा और निरन्तर इस भगवद्‌वाणी को अपने स्मरण—पथ पर रखना होगा—"तुम वीर जो हो, रे।"

मित्रो, मेरा आपसे, विशेषकर तरुणों से, अनुरोध है कि आप सब श्रीरामकृष्ण की शक्ति की उद्दीप्त छटा की ओर लौटें, उस छटा की ओर जिसके एक किरण—कण से ही स्वामी विवेकानन्द जैसे नर—रत्न का आविर्भाव हुआ था। तभी हमारा, हमारे देश का और आप सब का मंगल होगा।

भगवान् श्रीरामकृष्ण से हमारी आंतरिक प्रार्थना है कि वे हम सब में अपनी शक्ति के मात्र एक अणु का भी संचार करने की कृपा करें ताकि हम वर्तमान अंधकार के पंक—जाल से मुक्त होकर प्रगति, विकास और मंगल के आलोक—लोक में प्रतिष्ठित हो सकें। जय भगवान् श्रीरामकृष्ण।

पुनर्जन्म

श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महार।

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के वर्त्तमान अध्यक्ष, परम पावन श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज रामकृष्ण-विवेकानन्द भावादर्श एवं वेदान्त के शाश्वत मूल्यों पर व्याख्यान देने के लिए अक्सर विभिन्न देशों से आमंत्रित किये जाते रहे हैं। सन् १९८२ ई० में उनकी तीन सप्ताहों की व्याख्यान-यात्रा के दौरान शिकागो (अमरिका) के कुछ जिज्ञासुओं के एक प्रश्नोत्तर-सत्र में उनसे जो प्रश्न किये गये थे, पूज्य महाराज जी ने उन प्रश्नों के बड़े ही तत्वपूर्ण एवं तथ्यपूर्ण उत्तर दिये थे। इन्हीं प्रश्नोत्तरों को अंग्रेजी से अनूदित कर हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। यह प्रश्नोत्तर-सत्र विवेकानन्द सोसाइटी, साउथ हाइड पार्क, बेलवार्ड, शिकागो के प्रधान स्वामी भाष्यानन्दजी के आग्रह पर वहीं आयोजित हुआ था। पिछले अंक में कई प्रश्नों के उत्तर छपे थे। इस अंक में "पुनर्जन्म" विषय पर पूछे गये केवल एक ही प्रश्न का उत्तर दिया जा रहा है।

अनुवादक हैं-डॉ० केदारनाथ लाभ -सं०

प्रश्न : क्या आप पुनर्जन्म के सम्बन्ध में वेदान्त सोसाइटी की धारणा से अवगत करा सकते हैं ?

स्वामी रंगनाथानन्दजी : हिन्दू धर्म में तथा भारत में उत्पन्न अन्य धर्मों, जैसे बौद्ध धर्म, जैन धर्म में पुनर्जन्म का यह विलक्षण सिद्धान्त है; यह कहता है कि जन्म जन्मान्तर तक प्रयत्न करने के उपरान्त तुम्हें आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त होती है, और अन्तिम जन्म में जब तुम्हारा मन पूर्णतः परिपक्व और विकसित हो जाता है तब तुम आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त कर लेते हो। जीवन का उद्देश्य आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त कर लेना है। यह आध्यात्मिकता पहले से ही हम में विद्यमान है, केवल हम यह नहीं जानते कि इसे कैसे व्यक्त किया जाय, और इसीलिए हम प्रयत्न करते हैं। किन्तु, एक जीवन में ही यह समस्त आध्यात्मिक विकास और अनुभूति प्राप्त करने में हम समर्थ नहीं होते। अतएव, हिन्दू मनीषी कहते हैं कि 'इस प्रक्रिया को पूरा करने के लिए मनुष्य जन्म–दर–जन्म यात्रा करता रहता है।' मानव–व्यक्तित्व का गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन कर इसका अन्वेषण किया गया तथा बड़े सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया गया। प्रत्येक मनुष्य के दो शरीर होते हैं। एक है **स्थूल शरीर**। स्थूल का अर्थ है मूर्त, ठोस और स्पर्शनीय। दूसरे को **सूक्ष्म शरीर** कहते हैं। तुम्हारी समस्त आकांक्षाओं कामनाओं, तुम्हारे सारे मनोभावों, तुम्हारी प्रवृत्ति के सारे अवचेतन एवं अचेतन तत्त्वों, तथा तुम्हारे द्वारा किये जानेवाले कार्यों से निर्मित समस्त वृत्तियों अथवा संस्कारों से तुम्हारे **सूक्ष्म शरीर** का निर्माण होता है। वही वास्तविक मानव प्राणी है। बाह्य मानव तो मात्र एक आधान या पात्र है। यह स्थूल शरीर केवल मनुष्य की जाग्रत चेतना या जाग्रत अवस्था में कार्य करता है। एक तीसरा सूक्ष्मतर शरीर भी है जिसे **कारण शरीर** कहते हैं। स्थूल शरीर जाग्रत अवस्था में प्रबल रहता है, सूक्ष्म शरीर स्वप्नावस्था में प्रबल रहता है तथा कारण शरीर सुषुप्ति अवस्था में प्रबल रहता है। इन तीनों अवस्थाओं का द्रष्टा नित्य–मुक्त, शुद्ध, ज्योतिर्मय असीम आत्मन् है, जिसे **साक्षी** कहते हैं। यह तीनों अवस्थाओं के कर्त्ता और कर्म का प्रत्यक्षदर्शी या द्रष्टा है जिसे वेदान्त में **अवस्थात्रय साक्षी** कहा गया है। यह सभी जीवों की नित्य शुद्ध, नित्य मुक्त, अखण्ड ज्योतिर्मय–वास्तविक सत्ता है। इसका न जन्म होता है, न मृत्यु होती है। किन्तु जब यह भौतिक या स्थूल शीर के जाल में

पुनर्जन्म

श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के वर्त्तमान अध्यक्ष, परम पावन श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज रामकृष्ण–विवेकानन्द भावादर्श एवं वेदान्त के शाश्वत मूल्यों पर व्याख्यान देने के लिए अक्सर विभिन्न देशों से आमंत्रित किये जाते रहे हैं। सन् १९८२ ई० में उनकी तीन सप्ताहों की व्याख्यान–यात्रा के दौरान शिकागो (अमरिका) के कुछ जिज्ञासुओं के एक प्रश्नोत्तर–सत्र में उनसे जो प्रश्न किये गये थे, पूज्य महाराज जी ने उन प्रश्नों के बड़े ही तत्वपूर्ण एवं तथ्यपूर्ण उत्तर दिये थे। इन्हीं प्रश्नोत्तरों को अंग्रेजी से अनूदित कर हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। यह प्रश्नोत्तर–सत्र विवेकानन्द सोसाइटी, साउथ हाइड पार्क, बेलवार्ड, शिकागो के प्रधान स्वामी भाष्यानन्दजी के आग्रह पर वहीं आयोजित हुआ था। पिछले अंक में कई प्रश्नों के उत्तर छपे थे। इस अंक में "पुनर्जन्म' विषय पर पूछे गये केवल एक ही प्रश्न का उत्तर दिया जा रहा है।

अनुवादक हैं–डॉ० केदारनाथ लाभ –सं०

प्रश्न : क्या आप पुनर्जन्म के सम्बन्ध में वेदान्त सोसाइटी की धारणा से अवगत करा सकते हैं ?

स्वामी रंगनाथानन्दजी : हिन्दू धर्म में तथा भारत में उत्पन्न अन्य धर्मों, जैसे बौद्ध धर्म, जैन धर्म में पुनर्जन्म का यह विलक्षण सिद्धान्त है; यह कहता है कि जन्म जन्मान्तर तक प्रयत्न करने के उपरान्त तुम्हें आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त होती है, और अन्तिम जन्म में जब तुम्हारा मन पूर्णतः परिपक्व और विकसित हो जाता है तब तुम आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त कर लेते हो। जीवन का उद्देश्य आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त कर लेना है। यह आध्यात्मिकता पहले से ही हम में विद्यमान है, केवल हम यह नहीं जानते कि इसे कैसे व्यक्त किया जाय, और इसीलिए हम प्रयत्न करते हैं। किन्तु, एक जीवन में ही यह समस्त आध्यात्मिक विकास और अनुभूति प्राप्त करने में हम समर्थ नहीं होते। अतएव, हिन्दू मनीषी कहते हैं कि 'इस प्रक्रिया को पूरा करने के लिए मनुष्य जन्म–दर–जन्म यात्रा करता रहता है।' मानव–व्यक्तित्व का गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन कर इसका अन्वेषण किया गया तथा बड़े सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया गया। प्रत्येक मनुष्य के दो शरीर होते हैं। एक है **स्थूल शरीर**। स्थूल का अर्थ है मूर्त, ठोस और स्पर्शनीय। दूसरे को **सूक्ष्म शरीर** कहते हैं। तुम्हारी समस्त आकांक्षाओं कामनाओं, तुम्हारे सारे मनोभावों, तुम्हारी प्रवृत्ति के सारे अवचेतन एवं अचेतन तत्त्वों, तथा तुम्हारे द्वारा किये जानेवाले कार्यों से निर्मित समस्त वृत्तियों अथवा संस्कारों से तुम्हारे **सूक्ष्म शरीर** का निर्माण होता है। वही वास्तविक मानव प्राणी है। बाह्य मानव तो मात्र एक आधान या पात्र है। यह स्थूल शरीर केवल मनुष्य की जाग्रत चेतना या जाग्रत अवस्था में कार्य करता है। एक तीसरा सूक्ष्मतर शरीर भी है जिसे **कारण शरीर** कहते हैं। स्थूल शरीर जाग्रत अवस्था में प्रबल रहता है, सूक्ष्म स्वप्नावस्था में प्रबल रहता है तथा कारण शरीर सुषुप्ति अवस्था में प्रबल रहता है। इन तीनों अवस्थाओं का द्रष्टा नित्य–मुक्त, शुद्ध, ज्योतिर्मय असीम आत्मन् है, जिसे **साक्षी** कहते हैं। यह तीनों अवस्थाओं के कर्त्ता और कर्म का प्रत्यक्षदर्शी या द्रष्टा है जिसे वेदान्त में **अवस्थात्रय साक्षी** कहा गया है। यह सभी जीवों की नित्य शुद्ध, नित्य मुक्त, अखण्ड ज्योतिर्मय–वास्तविक सत्ता है। इसका न जन्म होता है, न मृत्यु होती है। किन्तु जब यह भौतिक या स्थूल शीर के जाल में

आबद्ध हो जाती है, तब इसे अनेक जन्मों की अनुभूतियों, यहाँ तक कि जन्म और मृत्यु की गलियों से गुजरना पड़ता है। अतः मृत्यु के समय, हम अपने शरीर को पीछे छोड़ देते हैं और हमारा सूक्ष्म शरीर बना रहता है। यहाँ तक कि अभी भी यह सूक्ष्म शरीर मुझमें कार्य कर रहा है। मेरी पाचन क्रिया मेरे सूक्ष्म शरीर द्वारा की जाती है, मेरे कोशाणु केवल इसी सूक्ष्म शरीर द्वारा मेरे शरीर में उत्पन्न किये जाते हैं। अन्त में, अपने प्रयोजन की सिद्धि में असमर्थ पाने पर यह **सूक्ष्म शरीर** मेरे इस शरीर का परित्याग कर देता है। इसे मृत्यु कहते हैं। और यह शरीर दूसरा जन्म ग्रहण करता है और यह प्रक्रिया जारी रहती है। इस तरह हम जीवन–दर–जीवन चलते रहते हैं। कभी हम ऊपर जाते हैं और कभी नीचे, परन्तु कुल मिलाकर, जब तक एक विशेष पूर्णता की प्राप्ति नहीं होती है तब तक हम थोड़ी–थोड़ी उन्नति करते रहते है। सारे अशुभ तत्त्व और सारे अशुभ या बुरे संस्कार विनष्ट हो जाते हैं, आध्यात्मिक ज्ञान तथा आध्यात्मिक अनुभूति की अग्नि में जल जाते हैं तथा इस प्रकार के जन्म और मृत्यु की प्रक्रिया हमारे लिए समाप्त हो जाती है। एक बीज जब आग में जल जाता है तब बोने पर भी उसमें अंकुरित होने की शक्ति नहीं रहती। इसी प्रकार मनुष्य में संस्कारों या वासनाओं के बीज आध्यात्मिक ज्ञान की आग में, आध्यात्मिक अनुभूति की अग्नि में जलकर भस्मीभूत हो जाते हैं। तब न जन्म होता है, न मृत्यु होती है ; हम मुक्त हो जाते हैं। यही मुक्ति की अवस्था या आध्यात्मिक मुक्ति की अवस्था है। इसी से **भगवद्गीता** के छठे अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं: **अनेक जन्म संसिद्धिः ततो याति परां गतिम्।'** अनेक जन्मों के संस्कार बल से इसी जन्म में संसिद्ध होकर मनुष्य तत्काल ही परमगति को प्राप्त हो जाता है।

एक व्यक्ति योगी होने का प्रयत्न करता है। एक जीवन में वह बहुत अधिक उपलब्धि नहीं प्राप्त कर पाता या पाती है। तथापि उपलब्ध किया गया है और प्रयत्न तब तक जारी रहता है जब तक, अन्तिम जन्म में वह पर्याप्त परिपक्व या पूर्ण नहीं हो जाता या जाती है। वह सत्य की उपलब्धि कर लेता या लेती है तथा मुक्त हो जाता या जाती है। पुनर्जन्म की यही अवधारणा है। भारत में इसे साधारण व्यक्तियों द्वारा नहीं, बाजीगरों द्वारा नहीं; बल्कि परम तीक्ष्ण बुद्धिवालों महा मनीषियों, जैसे बुद्ध, शंकराचार्य, श्रीकृष्ण तथा वर्तमान में स्वामी विवेकानन्द द्वारा अनुमोदित किया गया है। पूर्व में उपनिषद् के ऋषियों ने यह विलक्षण उपदेश दिया क्योंकि उन्होंने दृश्यमान स्थूल शरीर के अतिरिक्त मानव जीवन में अदृश्य सूक्ष्म शरीर का अन्वेषण किया। पश्चिम मनुष्य के विषय में केवल इस स्थूल शरीर को जानता है जिसे तुम अपनी आँखों से देख सकते हो, स्पर्श कर सकते हो तथा संचालित कर सकते हो। किन्तु भारत की मान्यता है कि जब यह शरीर मर जाता है, तब मानव का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता, बल्कि उसका अभियान जारी रहता है। इसी से, मृत्यु केवल एक अर्धविराम है, और वाक्य जारी रहता है। मृत्यु केवल एक विस्मरण है, और हम नये जीवन में लौट आते हैं।

पुनर्जन्म के विरुद्ध एक मात्र आपत्ति यह है कि तुम अपने विगत जीवन को याद नहीं रख पाते। ऐसा इसलिए होता है कि प्रकृति ने मानव क्रम– विकास को जारी रखते हुए पूर्णतः आगे देखने के लिए विगत जीवनों की स्मृति पर एक आवरण डाल रखा है। पिछले जन्मों की स्मृति हमारे आध्यात्मिक क्रम–विकास में अवरोध उत्पन्न

कर देगी। अतएव, उस स्मृति को अवरुद्ध कर प्रकृति ने मानव पर दया की है। यह आलोचना, कि चूँकि तुम्हें अपने विगत जीवन का स्मरण नहीं है अतः पुनर्जन्म का सिद्धान्त गलत है, अपने आप में गलत है, क्योंकि स्मृति अस्तित्व की कसौटी नहीं है। तुम कभी बच्चे नहीं थे क्योंकि तुम्हें याद नहीं है कि तुमने बचपन में क्या-क्या किया, क्या यह हो सकता है ? अतः यही **पुनर्जन्म** का सिद्धान्त है। यही पुनर्जन्म की अवधारणा है। न्यु टेस्टामेंट (नव-विधान) में स्वयं ईसा मसीह को हर तरह से दावे के साथ कहते हुए तुम पढ़ते हो कि बपतिस्मा दाता (दीक्षा देने वाला) जॉन के रूप में पैगम्बर इलियास ही है जिसे मेरे लिए आना था।"

हम यह नहीं कह सकते कि आनुवंशिकी पूनर्जन्म को अस्वीकार करती है। भारतीय विद्या भवन, बम्बई द्वारा प्रकाशित मेरी पुस्तक द **मैसेज ऑफ द उपनिषद्स (उपनिषदों का संदेश)** {पृ0- ५७४, ६०२ और ६०३} को पढ़ने के उपरान्त सर जूलियन हक्सले ने मुझे लिखा-

द मैसेज ऑफ द उपनिषद्स नामक पुस्तक के पृ0 ३१४ में आपने लिखा है कि मानव व्यक्तित्व के 'उत्तर जीवन का सत्य' इस का अर्थ क्या है इसे मैं बिल्कुल नहीं समझ पाता। यह अनुमान या परिकल्पना है जिसे विभिन्न धर्मों ने 'निश्चितता' के रूप में उद्घोषित करने की चेष्टा की है-यहाँ तक कि 'निश्चित' के रूप में उद्घोषित भी किया है-किन्तु किसी ने भी (अध्यात्मवादियों ने भी) इसे तथ्य के रूप में प्रमाणित करने में सफलता नहीं पायी है। अनेक अन्य व्यक्तियों की भाँति मैं इसे सत्य होना चाहूँगा किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है। जहाँ तक **पुनर्जन्म** (पृ0 ३१३) का प्रश्न है, केवल यही नहीं है कि इसका कोई प्रमाण नहीं है, बल्कि आनुवंशिकता के तथ्य-कम से कम मेरे [illegible] इसे अरागव बना देता है।

अपने उत्तर में, अन्य बातों के आलावा, मैंने लिखा (पृ0 ६०२) जब जीव विज्ञान प्रोद्यौगिक उपलब्धियों के आश्चर्यों से कम तथा अस्तित्व के रहस्य की खोज में शुद्ध विज्ञान के भाव से अधिक प्रमाणित होता है, तब बीसवीं शताब्दी के भौतिक विज्ञान के उस परिष्कृत भाव तथा रहस्य के आगे अपनी सीमाओं के बोध को अभिगृहीत करने के लिए वह बाध्य है। तब इसे यह मानना ही पड़ेगा कि डी0एन0ए0 एवं आर0एन0ए0 (गुण-सूत्रों) आदि के आविष्कार के द्वारा आनुवंशिक संकेत को प्रकट करना केवल दूसरे **रासायनिक** संकेत को प्रकट करना है न कि इसके **आत्मिक** संकेत को। उस परवर्त्ती संकेत (आत्मिक संकेत) को जानने के लिए नयी विधियों और प्रणालियों की अवश्यकता होगी। जब इन्हें जान लिया जायगा तब भौतिक विज्ञान को यह वेदान्त के निकट ले आयगा।

आने वाली, संभवतः इक्कीसवीं शताब्दी की वैचारिक क्रान्ति में यह एक प्रमुख विषय होगा।

भौतिक विज्ञान मानव जाति के आध्यात्मिक स्वरूप, भौतिक शरीर की इसकी स्वाधीनता की संभावना तथा पुराने शरीरों की मृत्यु पर नये शरीरों के द्वारा इसके प्रकटीकरण या आविर्भाव की सम्भावना को स्वीकार करने में आनुवंशिकी को अभी बाधक पा सकता है। परन्तु वेदान्त इसे असंगत या परस्पर विरोधी प्रतिकूलता के रूप में नहीं मानता क्योंकि यह मन और पदार्थ या वस्तु में, जैसा कि पाश्चात्य दर्शन में पाया जाता है, या आत्मा और शरीर में, जैसा कि पाश्चात्य धर्म विज्ञान में पाया जाता है, कोई परस्पर विरोधी प्रतिकूलता नहीं मानता। आनुवंशिकी जीवन के **भौतिक आधार** की व्याख्या करने का प्रयत्न

करता है। इस क्षेत्र में इसने पहले से ही रासायनिक तत्वों का अन्वेषण कर लिया है। वेदान्त का कथन है कि मनुष्य की आनुवंशिक संरचना के द्वारा जिस आत्मा या सूक्ष्म शरीर का प्रकटीकरण होता है उसे भी आनुवंशिक और जीवन की प्रक्रियाओं में भूमिका निभानी होती है जिसकी व्याख्या केवल भौतिक तत्वों से नहीं की जा सकती। नाही आनुवंशिकता, न वातावरण न संयोग मनुष्य के रहस्य की पूर्णतः व्याख्या कर सकते हैं।

आणविक जीव विज्ञान को अब आनुवंशिक उपादान तथा रासायनिक गुणधर्मों एवं प्रक्रियाओं की कुछ समझदारी आ गयी है। परन्तु इस समझ पर आधारित समग्र रूप में जीवन के बारे में निष्कर्षों में क्रान्तिकारी परिवर्तनों का होना अवश्यम्भावी है, खासकर ज्योंही और जब आणविक जीव विज्ञान का विकास होगा जैसा कि बीसवीं शताब्दी के भौतिक विज्ञान के मामले में हुआ। इस विज्ञान का विकास पहले आणविक और बाद में नाभिकीय आयाम में हुआ। आइन्स्टीन के प्रसिद्ध समीकरण में आणविक भौतिक विज्ञान ने समस्त पदार्थों को ऊर्जा में रूपान्तरित कर दिया। आणविक जीव विज्ञान अपनी आनुवंशिकता के तत्वों यथा जीनों (Genes) को तत्वों से शक्तियों में और शक्तियों से मात्र प्रेरण में रूपान्तरित करने की दहलीज पर आ खड़ा हुआ है। .....प्रमात्रा भौतिक विज्ञान (क्वाण्टम फिजिक्स) का अनिर्धारित या अनिश्चितता का सिद्धान्त के द्वारा तब आनुवंशिकता पर धावा कर देने की सम्भावना है। इससे भौतिक विज्ञान की अपेक्षा और अधिक गम्भीर समस्याएँ उठ खड़ी होंगी, क्योंकि भौतिक विज्ञान में अनिर्धारिता ने कुछ वैज्ञानिकों को भौतिक विज्ञान के जगत से सभी पदार्थों को निर्वासित करने को प्रेरित किया है। उनका कथन है–'मन की सर्वोच्च एवं एकमात्र प्रबलता है।' जीव विज्ञान में इसी प्रकार की अनिर्धारिता के द्वारा और अधिक शक्ति के साथ ऐसे ही सत्य के तट पर उपस्थित होने की सम्भावना है, क्योंकि जीव विज्ञान, निकट से अनउत्क्रम मापक पद्धति, जिसे जीवन कहते हैं, का अध्ययन करता है।

जब तक ऐसी अनिवार्यताएँ स्वयं आनुवंशिकता से उत्पन्न होती रहेंगी, तबतक उत्तरजीविता और पूनर्जन्म, वस्तुतः गैर भौतिक आध्यात्मिक सिद्धान्त का विचार ही, भौतिक विज्ञान के लिए एक परिकल्पना ही बने रहेंगे।

केवल आनुवंशिकता ही एक ही परिवार के बच्चों की भिन्न–भिन्न मानसिक अवस्थाओं तथा प्रवृत्तियों और जीवन की रूचियों की व्याख्या नहीं कर सकती। बच्चों के शरीर ही उस परिवार के आनुवंशिक प्रभाव को वहन करते हैं न कि उनका मन और मस्तिष्क। एक लड़का शिल्प विज्ञानी हो सकता है तो दूसरा एक व्यवसायी। तीसरा संगीतज्ञ हो सकता है और चौथा धार्मिक। ये भिन्नताएँ जीवन के भौतिक आधार की अपर्याप्तता को प्रकट करती हैं और जीवन के आत्मिक तत्व की भी माँग करती है।

हमारे ठाकुर बहुत लिखना–पढ़ना नहीं जानते थे। ईश्वर के प्रति भक्ति होना ही सार वस्तु है। इस बार पृथ्वी पर ठाकुर का आविर्भाव गरीब–धनी, पण्डित–मूर्ख, सभी के उद्धार के लिए हुआ है। मलय–पवन यहाँ जोरों से प्रवाहित हो रहा है। जो अपना पाल थोड़ा–सा खोलेगा और ठाकुर के प्रति शरणागत होगा, वह धन्य हो जायगा।

–श्री श्रीमाँ सारदा देवी

पुरुषार्थ और भगवत्-कृपा

ब्रह्मलीन श्रीमत् स्वामी आत्मानन्दजी

पुरुषार्थ और भगवत् कृपा इस विषय को लेकर चर्चा करने के लिए कहा गया है। यह विषय इसलिए चुना कि हमलोगों के मन में संदेह रहता है कि पुरुषार्थ बड़ा है अथवा भगवत् कृपा ? दोनों के पक्षधर मिलते हैं,और दोनों के पक्षधर अपने-अपने पक्ष में नितान्त प्रबल मत धारण करते हैं। तो रामचरित मानस के माध्यम से तथा अन्य कुछ दृष्टान्तों की सहायता से आपके समक्ष वह चर्चा की जायेगी कि पुरुषार्थ और भगवत् कृपा, ये क्या दोनों स्वतन्त्र हैं अथवा एक दूसरे पर आधारित हैं तथा क्या इन दोनों को समन्वित करके देखा जा सकता है ? गोस्वामी जी ने रामचरित मानस में एक प्रसंग उठाया है। गोस्वामी जी की मान्यता यह है कि रामचरित मानस की रचना श्रीराम की प्राप्ति के लिए हुई है। वे तो स्वान्तः सुखाय उसे रचते हैं और उसका यह लक्ष्य मानते हैं कि भगवान श्रीराम की प्राप्ति हो। उसके लिए वहाँ पर जो क्रम प्रदर्शित किया है, वही क्रम हम अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू कर सकते हैं। भगवान श्रीराम को पाने में पुरुषार्थ का महत्व है या भगवान् की कृपा महत्वपूर्ण है ? उसी प्रकार जीवन में जो भी कार्य हम करते हैं उसके लिए पुरुषार्थ आवश्यक है अथवा भगवत् कृपा ? गोस्वामी तुलसी दास जी मानते हैं कि भगवान श्रीराम की प्राप्ति ही रामचरित मानस का उद्देश्य और लक्ष्य है। तो यह प्राप्त कैसे होती है ? क्या जप के द्वारा ? तप के द्वारा ? वे हमारे समक्ष बहुत विलक्षण बात कहते हैं –

"मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा,
किये जोग, तप, ज्ञान, विरागा।"

कहते हैं कि भगवान बिना अनुराग के नहीं मिलते हैं। आप कितना भी जप कीजिए, तप कीजिए, ज्ञान भीतर में लाइये, वैराग्य लाइये पर भगवान जो मिलते हैं, अनुराग के सहारे मिलते हैं। तो यहाँ पर ऐसा लगता है कि क्या गोस्वामी जी पुरुषार्थ का महत्व कम कर दे रहे हैं क्योंकि जप, तप, ज्ञान और वैराग्य ये तो पुरुषार्थ सध्य होते हैं। जप हम करते हैं तो पुरुषार्थ से ही करते हैं। कोई तपस्या करेगा तो उसमें पुरुषार्थ ही निहित होगा। कोई ज्ञान लाने की चेष्टा करेगा तो स्वाध्याय करेगा, अध्ययन करेगा, उसमें भी पुरुषार्थ की महत्ता है और इसी प्रकार वैराग्य लाने के लिए अपने भीतर में वह विवेक धारण करेगा, नित्य और अनित्य का विवेचन करता रहेगा तो वहाँ पर भी लगता है कि मनुष्य तो पुरुषार्थ के माध्यम से ही यह सब कुछ कर सकता है। पर गोस्वामी जी कहते हैं–किये जोग तप, ज्ञान, विरागा, चाहे तुम योग करो, चाहे तुम तप करो, चाहे तुम ज्ञान लाओ, चाहे तुम वैराग्य धारण करो पर श्रीराम मिलने वाले नहीं हैं। अब इसका तात्पर्य क्या है ? क्या पुरुषार्थ के द्वारा वे नहीं मिलते ? गोस्वामी जी वहाँ पर मात्र एक संकेत देते हैं और यह संकेत तो रामचरित मानस में कई स्थानों पर दिया गया है कि ये जो साधन हैं, जिन साधनों की सहायता से हम ईश्वर को पाने की चेष्टा करते हैं तो जब यह साधन करना शुरू करते हैं तो वहाँ पर हमारा अहंकार आ जाता हैं। ईश्वर की प्राप्ति में अहंकार सबसे प्रथम बाधा है और इसीलिए एक विलक्षण संकेत देते हुए वे कहते हैं विनय पत्रिका में। विनय पत्रिका की बात भी बड़ी उल्टी मालूम पड़ती है। वे वहाँ पर यह कहते हैं कि –

"करतहु सुकृत न पाप सेराई,
रक्तबीज जिमि बाढ़त जाई।"

सुकृत करने से पाप समाप्त नहीं होते बल्कि जैसे रक्तबीज को मारने से रक्तबीज बढ़ता था वैसे ही पुण्य करने से पाप समाप्त नहीं होते बल्कि बढ़ते हैं। अब यह तो उल्टी धारणा है। हम तो यह मानते हैं कि पुण्य करने से पाप समाप्त होता है और इसीलिए हम पुण्य करने के लिए अग्रसर होते हैं। पर गोस्वामी जी एकदम

उल्टी बात लिख देते हैं। इसका तात्पर्य क्या है? इसमें बहुत तात्विक अभिप्राय भरा है। जो कह रहे हैं उसमें किसी प्रकार, हम यह कहेंगे कि वे बढ़ा करके नहीं कह रहे हैं, अतिरंजना नहीं कर रहे हैं! वे यह कहते हैं कि पुण्य करने से पाप समाप्त नहीं होते—**करतहु सुकृत न पाप सेराही,** सुकृत यानी पुण्य करने से पाप सेराते नहीं होते, नष्ट नहीं होते बल्कि रक्तबीज को मारने से जैसे रक्तबीज बढ़ता था वैसे ही पुण्य करने से पाप बढ़ते हैं। तो कौन पुण्य करेगा ? यदि यही सिद्धान्त हो जाये स्थापित तो फिर पुण्य कौन करेगा ? पाप बढ़ाने के लिए ? पर आध्यात्मिक दृष्टि से उनकी जो गहन दृष्टि है, वह बहुत दर्शनीय है। वे क्या कहते हैं ? जैसे रक्तबीज पर कोई देवता प्रहार करे मारने के लिए तो उसके शरीर से रक्त निकलता था। उसे वरदान मिला था कि तुम्हारे शरीर से एक बूंद रक्त नीचे जमीन पर गिरे तो एक नया रक्तबीज पैदा हो जाये। अब जब भी देवता उसे मारें, शरीर से रक्त की कई बूंदें गिरतीं जमीन पर और उतने नये रक्तबीज खड़े हो जाते। पहलावाला तो रक्तबीज मरा नहीं, ये नये रक्तबीज पैदा हो गये। तो देवतओं के लिए बड़ी समस्या हो गई और तब हम पढ़ते हैं कि देवताओं ने शक्ति की प्रार्थना की और तब शक्ति भगवती आती हैं कालिका का रूप लेकर। एक हाथ में खड्ग, दूसरे हाथ में खप्पर और प्रहार करती जाती हैं और जो रक्त गिरता है, उसे ले लेती हैं वे उसमें और उसके बाद खप्पर में लेकर के उस रक्त का पान कर लेती हैं। रक्तबीज के शरीर के रक्त को जमीन पर गिरने नहीं देती और इस प्रकार उन समूचे रक्तबीजों का नाश करती हैं। यह कथा है!

अब गोस्वामी जी ने आध्यात्मिक तात्पर्य हमें दिया तो ठीक। पुण्य करने से पाप बढ़ते हैं। इसका मतलब क्या है ? कि पुण्य करने से पुण्याभिमान उसके पीछे लग जाता है, पुण्य करने का अहंकार कि मैं पुण्य कर रहा हूँ। जैसे मैं सत्यवादी हूँ तो सत्यवादिता का अहंकार, तपस्या करता हूँ तो तपस्वी का अहंकार तो यह जो पुण्य कर्म के पीछे अहंकार लगता है तो इसके कारण पुण्य मानों पाप में परिवर्तित हो जाता है। गोस्वामी जी एक बात कहते हैं कि ये तो सद्गुण हैं तो सद्गुण तबतक रहते हैं जब हम अपने अहंकार को भगवान के चरणों में विसर्जित करते हैं पर सद्गुणों के साथ अहंकार आ जाये तो ये सदगुण ही दुर्गुण बन जाते हैं। अब यह तो है ही बात ! उन्होंने नारद मोह के प्रसंग के माध्यम से हमारे समक्ष इस बात को रख दिया है कि नारद मोह का जो प्रसंग है आप जानते हैं। देवर्षि नारद ने काम पर विजय पा ली। काम डर गया, चरणों पर गिर गया तो देवर्षि नारद ने हंसकर क्षमा कर दी! कहा कि देखो ! इस प्रकार से अब तुम नहीं किया करना और तब धीरे से उनके जीवन में अहंकार आता है और वह अहंकार क्या कहता है ? कि देवर्षि नारद तुम भगवान शंकर से भी बड़े हो ! भगवान शंकर ने तो केवल काम पर विजय पायी थी क्रोध पर विजय न पा सके थे, उन्होंने तो क्रोध में आकर के कामदेव को भस्म कर दिया था पर तुम महान हो। तुमने काम को भी जीता है और क्रोध को भी जीता है इसलिए तुम भगवान शंकर से बढ़कर हो। बस यही तो अहंकार आया इसी अहंकार के कारण तो वे गये—**'अहमेव अधिकाई'** गोस्वामी जी वहाँ लिखते हैं कि वहाँ पर अधिक अहंकार से भरकर वे जाते हैं भगवान शंकर के पास और जब अहंकार उनके जीवन में आया तो अहंकार कहता है—महाराज ! जब आपने हमें बुला ही लिया है तो हम अपने समस्त संगी साथियों को बुला लेते हैं। तो अहंकार ने सब संगियों को बुलाया। काम को बुलाया, क्रोध को बुलाया, इतना काम देवर्षि नारद के जीवन में आया कि भगवान की साक्षात शक्ति पर ही मोहित होते हैं और इतना क्रोध आया जैसा कि हम कहा करते हैं—भगवान शंकर ने तो क्रोध किया था काम पर, नारद जी क्रोध करते हैं तो

पर ! ईश्वर को ही शाप दे देते हैं, भगवान को ही शाप देकर कहते हैं कि तुम भी इसी प्रकार बिलखोगे नारी के विरह में– **'दैहौं श्राप कि मरिहौं जाई, जगत मोर उपहास कराई।'** तो यह तात्पर्य है गोस्वामी तुलसीदास जी के कथन का कि सद्गुण तो ठीक हैं, पर सद्गुणों के साथ साथ यदि अभिमान भी आ जाता है तो यह अभिमान और अहंकार सद्गुणों को दुर्गुणों में परिवर्तित कर देता है। इसलिए उसकी स्थापना हुई

'मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा,
किये जोग, तप, ज्ञान, विरागा।'

जब किसी ने पूछा– गोस्वामीजी आप कहते हैं कि भगवान श्रीराम बिना अनुराग के मिलते नहीं है तो बताइए कि अनुराग को पाने की भी कोई साधना है ? कहते हैं तुलसी दास जी–हाँ ! है। क्या साधना है अनुराग पाने के लिए ?
तो कहा तुलसीदास जी ने–**'होई विवेक मोह, भ्रम भागा, तब रघुनाथ चरण अनुरागा'** जिस समय जीवन में विवेक आता है तो मोह और भ्रम भागते हैं और मोह और भ्रम भागने से रघुनाथ के चरणों में अनुराग उपजता है। इसका मतलब यह हुआ कि चरणों में अनुराग की जो बाधा है, वह बाधा है मोह और भ्रम ! मोह और भ्रम के कारण हम भगवान की तरफ जा नहीं पाते हैं। मोह और भ्रम का क्या मतलब है ? भ्रम का मतलब यह है कि जो वस्तु है उसे उस वस्तु के रूप में नहीं देखना। जैसे रस्सी पड़ी है और रस्सी को मैं साँप के रूप में देखता हूँ, इसको कहते हैं भ्रम और इस भ्रम के कारण मेरे जीवन में मोह उपजता है और मोह की भिन्न–भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ मेरे जीवन में होती हैं। मैं डरकर के भागता हूँ, चिल्लाता हूँ। तो ये जो भिन्न–भिन्न प्रतिक्रियाएँ हैं, ये प्रतिक्रयाएँ हैं भ्रम के कारण उत्पन्न मोह से। तो यहाँ पर यही बात कही गयी कि भ्रम और मोह के कारण भगवान के चरणों में हमारा अनुराग नहीं हो पाता। इसलिए भ्रम और मोह को दूर करो तो भगवान के चरणों में अनुराग आये।

कैसे दूर करें महाराज भ्रम और मोह को? ये संसार तो ठीक दिखाई देता हैं संसार दिखाई देता है, ईश्वर दिखाई नहीं देते तो कृपा कीजिए किस प्रकार से हमको यहाँ पर संसार में ईश्वर दिखाई देगें ? तो कहा गोस्वामी जी ने–विवेक का आलम्बन लो ! विवेक के सहारे तुम नित्य और अनित्य का विवेचन करोगे। जैसे Alexis Carrel की आपने यदि उनकी किताब पढ़ी हो–Man the unknown बहुत बढ़िया है। नॉबेल लारेट हैं और उन्होंने यह पुस्तक लिखी है Man the unknown. एक Man the Known तो हम जानते हैं एक मनुष्य का ज्ञात स्वरूप। और मनुष्य का अज्ञात स्वरूप ? आप जिस मनुष्य को जानते हैं उसके ज्ञात रूप को ही जानते हैं, वह कितना ऊँचा है ? उसका रंग कैसा है ? वह कितना है ? कैसा बोलता है ? उसका स्वभाव कैसा है ? पर उसका एक भाग इतना बड़ा है जो अजाना है। हम उसको नहीं जानते और वह उसका अज्ञात स्वरूप है और वह वहाँ पर कहते हैं जैसे आइसवर्ग, छोटा सा भाग समुद्र के उपर दिखाई देता है पर मात्र क्या आइसवर्ग उतना ही है? मालूम नहीं उसका कितना गुना अधिक भाग जल के भीतर छिपा है। बहुत छोटा सा दिखता है तो ठीक इसी प्रकार यह जो दिखाई देनेवाला भाग है, बहुत छोटा सा है। हमने मनुष्य को कितना जाना है ? और उसका बहुत बड़ा भाग तो नीचे में छिपा है। तो यहाँ पर भी यही बात कही जा रही है। यह तो कहा गया– विवेक ले आओ, नित्य और अनित्य का विवेक ले आओ। यह देखने की चेष्टा तो करो कि जो दिखाई देता है क्या उतना ही सबकुछ है ? या उसके पीछे में और कोई वृहत्तर उसका रूप है ? उसका स्वरूप है ? उसको समझने की चेष्टा करो और इसके लिए मैं एक उदाहरण देता हूँ जैसे एक व्यक्ति के घर में हम गये। उनका देहान्त हो गया। और वहाँ बैठकखाने में उनके सौ चित्र लगे हैं। एक चित्र तो वह है जब

उन्होंने जन्म लिया था, उस समय का एक चित्र है। थोड़े से बड़े हुए, घुटने के बल गड़ैया लेने लगे, एक चित्र है और इसी प्रकार बहुत से चित्र हैं अलग–अलग अवस्था के, अन्तिम चित्र वह है जहाँ पर चिता पर उनको लिटा दिया गया है और धू–धू करके चिता जल रही है और अंतिम चित्र प्रदर्शित कर रहा है यह मनुष्य की नियति है। अब ये सौ चित्र हैं छाया चित्र ! अब ये चित्र किसके हैं ? भिन्न–भिन्न भले दिखाई देते हो पर एक ही व्यक्ति के ये सारे के सारे चित्र हैं। ये जो परिवर्तन दिखाई देते हैं वे बाहर के रूप में भले दिखाई दें पर इन समस्त परिवर्तनशील रूपों के भीतर में एक ऐसा रूप छिपा है जो उस व्यक्ति का है जो बदलता नहीं है। तो ठीक एक वहं रूप जिसको हम कह सकते हैं या एक सत्य जो अनित्य सत्य है और सत्य का वह भाग नित्य सत्य है। तो विवेक जो करना होता है, सत्य के दो रूप हैं अनित्य सत्य, नित्य सत्य। तो इसी प्रकार गोस्वामी जी ने कहा कि विवेक करो, विवेक करने से मोह और भ्रम भागेगा और मोह और भ्रम भागने से अनुराग उत्पन्न होगा और अनुराग उत्पन्न होने से रघुपति मिलेंगे। जिज्ञासु ने कहा महाराज ! आपने तो ये साधनायें बतायीं। आपने कहा कि श्रीराम मिलते हैं, उनके मिलने के लिए अनुराग चाहिए। आपने कहा कि अनुराग की भी साधना है। मोह और भ्रम को भगाओ तो अनुराग आता है। आपने कहा कि इस मोह और भ्रम को भगाने की भी दवा है। वह है विवेक तो महाराज ! यह भी बता दिजीए कि विवेक कैसे feyrkgS\ rks;gkxkSokeh thdgrsgS **'बिनु सत्संग विवेक न होई।'** भाई ! विवेक पाना हो तो सत्संग करो, सत्संग के माध्यग से विवेक मिलता है। अब वह अपने मन में कुछ विचार करने लगा। सत्संग के माध्यग से विवेक मिलता है तो वह पूछता है महाराज ! सत्संग कैसे मिलता है ? इसका भी कोई उपाय है क्या? क्योंकि शायद उसने अपने जीवन में कुछ अनुभव किया है और आपमें से कई लोग जीवन में अनुभव करते हैं, किसी व्यक्ति से प्रभावित हो जाते हैं, वह साधु के समान है या संन्यासी है या उसको साधु के समान जीवन बिताता हुआ हम सुनते हैं, हम उसके करीब चले जाते हैं प्रभावित होकर के, पर जब हम नजदीक जाते हैं तो देखते हैं कि वह तो असाधु है, साधु नहीं है। कई लोगों के जीवन में इस प्रकार की बातें आती हैं कि हमने दूरसे देखा था तो साधु मालूम पड़े थे जब नजदीक में [illegible] मालूम पड़ता है कि यह तो बड़ा पाखण्डी है, यह तो बहुत छलिया है, यह भी तो नाम, यश, कीर्ति में उतना ही डूबा हुआ है जितना कि हमलोग डूबे हुए हैं। आखिर इस व्यक्ति से हम ईश्वर चर्चा क्या करें ? हम भगवत् भाव क्या प्राप्त करें ? तो बाहर से कुछ अच्छा सा लगता था। कुछ प्रभावी लगता था पर निकट गये तो लगता है कि यहाँ तो सत्संग नहीं मिल रहा है। तो शायद ऐसा ही वह व्यक्ति होगा। गोस्वामी जी से पूछा कि महाराज ! आपने तो कहा कि विवेक सत्संग से मिलता है और दया कीजिए सत्संग पाने का भी कोई उपाय बता दीजिए। अब हम लोग तो ऐसे हैं कि कौन साधु है ? कौन असाधु है ? इसकी पहचान तो नहीं कर सकते है और मापदण्ड करने के लिए कोई मशीन भी नहीं है, यंत्र भी नहीं है तो कृपा कीजिए कैसे सत्संग मिले ? तो गोस्वामी जी एक विलक्षण बात कह करके एक ऐसा वृत्त पूरा कर देते हैं कि वह तो अकचका जाता है प्रश्न करने वाला। तो यहां तो कहा कि 'बिनु सत्संग विवेक न होई' और सत्संग कैसे हो ? 'राम कृपा बिनु सुलभ न सोई' राम कृपा के बिना सत्संग सुलभ नहीं होता। अब यह तो बहुत विचित्र स्थिति है ! स्थिति क्या हो गई ? राम मिलेंगें अनुराग से, अनुराग आयेगा मोह भ्रम को भगाने से, मोह भ्रम भागेगा [illegible] विवेक आयेगा सत्संग से और सत्संग मिलेगा राम कृपा से। अब रामकृपा कैसे मिले ? यही तो मुश्किल बात है, यहाँ श्रीरामकृष्ण का एक उदाहरण है, परमहंसदेव का –

दो बच्चों में मालूम नहीं कैसे मित्रता हो गई। राजा का लड़का था और राजा के यहाँ काम करने वाली दासी थी, उसका लड़का था। अब राजा का लड़का उसके बिना रह नहीं सकता और एक दिन ऐसा सुना राजा के लड़के ने कि वे लोग गाँव छोड़कर, राज्य छोड़कर चले गये। अब उसके बिना उसको पलभर भी कल नहीं। कहता है कि वो रामू को बुला दो, मैं रामू से खेलूंगा। फिर राजकुमार के पिता ने, राजा ने इधर-उधर खोज कर रामू को बुलवा लिया। दस बारह दिन का अन्तर तो पड़ ही गया। रामू आया। क्यों रे रामू ! इतने दिन कहाँ चला गया? रामू ने कहा-क्या करें ? हमारे यहाँ पिताजी कहते थे कि तुम्हारे राज्य में, यहाँ तो कुछ काम ही नहीं था और इसीलिए बहुत मुश्किल होती थी। खाने पीने की तकलीफ थी और इसीलिए पिताजी फिर दूसरे राजा के राज्य में चले गये और फिर यहाँ राजा साहब ने हमलोगों को बुलवा लिया। क्योंकि तुमको बहुत इच्छा थी कि मैं यहाँ पर आ जाऊँ। तो वह जो राजकुमार है बहुत भोलेपन से कहता है-रामू तू अपने पिता से क्यों नहीं कहता कि वह कहीं के राजा हो जायें तो खाने-पीने का कष्ट नहीं होगा।

बहुत ठीक है, कोई दोष नहीं है कि अगर रामू का पिता कहीं का राजा हो जाये तो खाने पीने में कोई तंगी नहीं होगी पर प्रश्न यह है कि वह राजा हो कैसे ? तो यहाँ पर जो कहते हैं गोस्वामी जी कि रामकृपा होने से सत्संग मिलता है। बहुत ठीक है पर रामकृपा हो कैसे बाबा? यही तो है प्रश्न और यहीं पर हम भगवत्कृपा पर आते हैं।

यह रामकृपा कैसे होती है ? किस प्रकार से होती है ? क्या किसी व्यक्ति पर चुनकर होती है ? रामकृपा में पक्षपात होता है क्योंकि ऐसा लगता है जीवन में जब देखते हैं कि कोई व्यक्ति है जो बिना साधना किये बहुत ऊँचाई तक चला गया। और जीवन में दूसरा दृश्य यह भी दिखाई देता है कि बेचारा बहुत साधना करता था, तपस्वी था और बहुत कठोरी था पर मालूम नहीं अचानक एक स्थिति ऐसी बन गई कि वह फिसल गया। यही दिखाई देता है। पर ऐसे समय [illegible] बड़ा विचित्र सा लगता है। लगता है कि भगवान कैसे हैं ? न्यायी दिखते हैं, पक्षपात करते हैं, जो बेचारा चाहता था उठना, उसको तो उन्होंने गिरा दिया और जो कोई परिश्रम ही नहीं करता था, उसको उन्होंने उठा दिया। तो लगता है कि यह भगवत कृपा है क्या ? इसके क्या [illegible] नियम हैं ? तो कहा गया गोस्वामी जी के [illegible], अगर नियम हो तो कृपा कैसी ? आप समझ सकते हैं। जैसे मान लीजिए आपको, आपके पास कुछ ऐसी शक्ति है जिसको कहते हैं कि ठीक है भाई आपकी शक्ति है। शक्ति है, कोई आपसे पूछे कि अच्छा आप जो अपनी शक्ति का उपयोग करते हैं उसमें कोई नियम है क्या ? अरे ! नियम होने से शक्ति कहाँ है ? शक्ति में कोई नियम नहीं होता। उसमें तो आप कृपा कर देते हैं। यही है आपकी शक्ति। तो यह जो रामकृपा है तो रामकृपा कैसेआती है जीवन में ?

श्रीरामकृष्णदेव से भक्तों ने पूछा-महाराज! यह जो भगवतकृपा की बात कही जाती है तो भगवतकृपा में भी क्या पक्षपात होता है ? यह जो मनुष्य पुरूषार्थ करे तो यह तो भगवतकृपा का पक्ष है कुछ समझ में नहीं आता है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि भगवतकृपा में भी पक्षपात होता है तो आप यह कृपा करके बताइए कि भगवतकृपा को प्राप्त करने का कोई साधन क्या ? भगवतकृपा का अधिकारी बनने की कोई पात्रता है क्या ? श्रीरामकृष्णदेव ने उदाहरण बता दिया। सामने गंगा ! उन्होंने गंगा की ओर संकेत करके कहा-देखो ! यह गंगा जी बह रही हैं, यहाँ कितनी नौकाएँ हैं और देखो गंगा के वक्ष पर से हवा बहती जा रही है तो यह जो [illegible] बह रही है गंगा के वक्ष पर से, क्या इस वायु में किसी प्रकार का पक्षपात है ? किस प्रकार महाराज? भक्तों ने पूछा । कि मैं किसी नाव पर कम लगूँ और किसी नाव पर ज्यादा लगूँ ? तो

भक्तों ने कहा– महाराज ! वायु के हृदय में तो कोई पक्षपात नहीं है। वायु तो सभी नौकाओं पर एक समान बह रही है तो परमहंस देव ने हंसकर पूछा–मान लो कोई कोई नौका वाला अपना पाल तान देता है तब फिर कैसा मालूम पड़ेगा ? वह जो पाल तनी हुई नौका है उसमें भी हवा क्या उतनी ही लगेगी ? कहा – नहीं महाराज ! जिसमें पाल तनी है उसमें तो हवा अधिक लगेगी और उसकी गति अन्य नौकाओं की अपेक्षा तेज हो जायेगी। बस ! बस ! यही तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है– श्रीरामकृष्ण ने कहा ! समझाते हुए कहा–यह जो भगवत्कृपा रूपी वायु है यह सभी जीवों पर समान रूप से लग रही है। अब यह जो व्यक्ति पाल तान देता है, ऐसा लगता है कि उसके जीवन में भगवान की कृपा अधिक लग रही है। यह जो ईश्वर की कृपा है, ईश्वर की ओर से देने की वस्तु नहीं, यह तो भक्त की ओर से लेने की वस्तु है। हम कितनी मात्रा में उस कृपा का आहरण कर सकते हैं, यह हम पर निर्भर करता है कि मैं कितनी मात्रा में उस कृपा को लूंगा। तो भगवत्कृपा में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं। यह भगवत्कृपा रूपी वायु सभी जीवों पर समान रूप से लगती है। यह श्रीरामकृष्ण उदाहरण के द्वारा समझाते हैं और वे यह कहते हैं कि तुम जितनी मात्रा में इस कृपा को अपने भीतर ले लो, ले सकते हो, उतनी मात्रा में कृपा तुमको मिलेगी। यह तो तुम पर आधारित है कि तुम कितनी मात्रा इस कृपा को खीचते हो ! यह एक बहुत सुन्दर उदाहरण है भगवत्कृपा और पुरूषार्थ का समन्वय, और फिर उन्होंने एक उदाहरण दे दिया। उदाहरण देते हुए समझाया। जिस समय भक्तों ने पूछा कि महाराज आपने कहा, पाल तानों। नौका वाला पाल तान देता है तो हम भगवान की कृपा को आकृष्ट करने के लिए पाल तानें तो कैसे तानो? हम किस प्रकार से पाल तान सकते हैं ? तो श्रीरामकृष्ण उसके लिए भी उदाहरण देते हैं और वे कहते हैं जैसे एक छोटा सा बच्चा है, आंगन में खेल रहा है, माँ रसोई घर में है और माँ सोचती है कि मुन्ना थोड़ी देर और खेल ले ताकि मैं अपनी रसोई का काम समाप्त कर लूँ, पर माँ ने सुना कि मुन्ना रो रहा है। माँ दौड़कर आयी, मुन्ने को चुप कराने की कोशिश करती है, मुन्ना चुप नहीं होता, माँ की गोद में उठना चाहता है। माँ एक खिलौना मुन्ने के सामने रख दिया, मुन्ना खिलौने में भूल गया, माँ फिर से रसोई में चली गयी, काम करने लगी। सोचने लगी कि मुन्ना थोड़ी देर बहल जाये तो मेरा काम भी समाप्त हो। पर थोड़ी देर बाद माँ ने सुना, मुन्ना फिर से रो रहा है, उसी प्रकार चिल्ला–चिल्ला कर... वह फिर दौड़कर आती है आकर मुन्ना को समझाने की कोशिश की। मुन्ना नहीं समझता है। तरह–तरह से उसे चुप कराने की कोशिश की, नहीं चुप होता है, तब माँ ने खाने की कोई चीज रख दी, मुन्ना भूल गया और माँ फिर से रसोई में चली गई। पर थोड़ी ही देर के लिए, थोड़ी देर बाद मुन्ना ने फिर रोना शुरू किया तो माँ आई, अब तो मुन्ना कुछ नहीं चाहता, केवल माँ को चाहता है। माँ कुछ सामने रख देती है। खिलौना फेंक देता है। खाने की चीज रखती है, उसे ठोकर मार देता है। हाथ पैर पटक–पटक करके मचलता है माँ की गोद में बैठने के लिए तो माँ विवश हो जाती है, बाध्य हो जाती है, लाचार हो जाती है और अंत में मुन्ने को वह गोद में उठा लेती है। अब ये जो मुन्ना माँ की गोद पाकर के चुप हो गया, श्रीरामकृष्ण कहते हैं इसको देखने के दो तरीके हैं जो भगवत्कृपा का पक्षधर है वह कहता है कि देखो ! माँ ने मुन्ने पर कृपा की, कृपा करके अपनी गोद में उठा लिया। माँ ने यदि कृपा नहीं की होती तो मुन्ना माँ की गोद में कैसे पहुँचता ? सही लगता है, मुन्ना कैसे पहुँचता ? माँ ने कृपा करके मुन्ना को उठा लिया इसीलिए तो मुन्ना पहुँचा, नहीं तो कैसे पहुँच सकता था ? पर जो पुरूषार्थ का पक्षधर है वह कहता है कि तुम्हारी बात तो मैंने सुनी, अब तुम भी मेरी बात सुनो।

मैं तो कहता हूँ कि यह बच्चा अपने पुरूषार्थ से माँ की गोद में पहुँचा। जब पूछा गया कैसे ? तो उसने कहा कि देखो ! पहली बार जिस समय मुन्ना खिलौने में भूल गया तब तो माँ ने नहीं उठाया। दूसरी बार जब खाने की चीज में भूल गया, तब भी माँ ने नहीं उठाया पर तीसरी बार जब वह न तो खिलौने में भूलता है, न तो खाने की चीज में भूलता है और जब हाथ पैर पटक-पटक करके मचलता है माँ की गोद में उठने के लिए, तब तो माँ को बाध्य होकर, विवश होकर, लाचार होकर , मुन्ने को उठाना पड़ता है। तो मुन्ना तो अपने पुरूषार्थ से माँ की गोद में पहुँचा है। यह है एक समन्वय। एक अद्‌भुत समन्वय है कि हम जो पुरूषार्थ करते हैं तो किस प्रकार का पुरूषार्थ कर सकते हैं ? इस दिशा में यह संकेत मानों प्रदान करता है और गोस्वामी तुलसीदास जी यही बात कहते हैं वहाँ पर भी, उन्होंने कह तो दिया कि ठीक है ! यह जो सत्संग होता है, बिना विवेक के नहीं हो पाता।

"बिनु सत्संग विवेक न होई,
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।"

और फिर उसके बाद क्या कहते हैं ?-अच्छा ! यह तो बताओ, रामकृपा कैसे होती है ? तो वे ही कहते हैं, बताते हैं – रामकृपा कैसे होती है? रामकृपा के लिए क्या साधना चाहिए ? जीव क्या साधना कर सकता है ? जो उसके लिए वे कहते हैं – यहाँ पर कह रहे हैं, बड़ी अद्‌भुत बात कहते हैं –

"बिनु विश्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
रामकृपा बिनु सपनेहुं जीव न लह विश्राम ।।"

यह रामकृपा पाने के साधन हैं। कैसे ? रामकृपा पाने के लिए भक्ति आये और भक्ति कैसे आयेगी? विश्वास, यह जीव का विश्वास ! यह जो राम की कृपा हमें पानी है उसके लिए हमें क्या साधना करनी पड़ेगी ? जीव की साधना है उसका विश्वास। जैसे छोटा सा बच्चा, छोटे से बच्चे की साधना क्या होती है माँ को पाने की ? उसका विश्वास होता है, वह जानता है कि मैं रोऊँगा चिल्ला-चिल्ला करके तो माँ को आना ही पड़ेगा,.यह लड़के का विश्वास है जो विश्वास माँ को खींचता है, जैसे लड़का छोटा सा अपने एक साथी के साथ खेल रहा है आंगन में। साथी ने कहा-क्यों रे मुन्ना ? तू बहुत डींग मारता है तेरी अम्मा तुझे छोड़कर के कहीं जाती नहीं ! देख चली गई है बाहर तुझे छोड़कर के।

उससे कहा मुन्ने ने-नहीं, हो ही नहीं सकता, माँ मुझे छोड़कर जा ही नहीं सकती। कहा-अरे! मैंने देखा है जाते हुए।

मुन्ना पहले तो चिल्लायेगा-माँ ! और अन्दर से उत्तर आ जाये-'हाँ बेटे !' तो कहेगा-'देखा ! मैं कहता था न, माँ मुझे छोड़कर के जा नहीं सकती' और यदि उत्तर नहीं आया तो फिर जोर से कहेगा- माँ ! और फिर उत्तर नहीं आया तो जो खेल इतना प्रिय था मुन्ना को, माँ कहते-कहते थक गई-चल मुन्ना थोड़ा खा ले बेटा ! पर वह कहता रहा-थोड़ा सा खेलकर के आऊँगा। उसको खेल प्रिय है, खिलाड़ी प्रिय है पर जिस समय माँ का उत्तर नहीं मिलता है तब तो न खेल प्रिय लगता है, न खिलाड़ी प्रिय लगता है। और माँ ! माँ ! कहता हुआ भीतर घर की ओर भागता है। अब उसे सब अलोना लगता है, अब यह जो अलोना लग रहा है अगर उसकी माँ पड़ोस में गयी हो और पड़ोसन कहती है-बहन ! बहुत दिन बाद आयी हो, थोड़ी देर बैठ लो तो कहती है-तुम मुन्ने को जानती नहीं हो बहन, और वह मुझे नहीं देखेगा तो एकदम आसमान सिर पर उठा लेगा। इतना रोयेगा चिल्लायेगा। मुझे अभी जाने दो, बहुत देर से आकर बैठी हूँ। कहीं वह देख ले तो बहुत चिल्लायेगा, बहुत रोयेगा। मानो मुन्ना अपनी माँ को खींच रहा है। क्यों खींच रहा है ? उसकी साधना क्या है ? उसकी साधना है केवल उसका विश्वास ! मुन्ने को मालूम है कि जब मैं माँ को बुलाऊँगा तब माँ को आना ही पड़ेगा, भले ही मुन्ना बीच-बीच में माँ कहता है

जैसे माँ कह दिया तो माँ अपने बच्चे की आवाज को समझती है। अच्चा खेल रहा है, खलते–खेलते उसने माँ कह दिया तो माँ भी जानती है कि यह अब मुझे नहीं चाहता है, खेल–खेल में माँ कह रहा है पर जिस समय वह माँ को चाहता है और माँ कहकर के बुलाता है, माँ उसकी पुकार को सुनकर के समझ लेती है कि यह मुझे ही चाहता है। यह मुन्ने का विश्वास है जो माँ को बाँधकर के रखता है, माँ कहीं जा नहीं पाती है तो जैसे मुन्ने का पुरूषार्थ क्या है ? उसका विश्वास !

इसी प्रकार जीव का पुरूषार्थ क्या है ? उसका विश्वास ! प्रभु तुम मेरे हो ! तुम मुझ पर करूणा करो, मैं तुम्हारे बिना कुछ भी नहीं हूँ। तुम कृपा करो, प्रभु तुम कृपा करो ! यह जो जीव का विश्वास है, यह जीव का विश्वास ही उसका पुरूषार्थ है और इस पुरूषार्थ के बल पर द्रवित होते हैं भगवान और द्रवित होकर के कृपा करते हैं और कृपा करके क्या करते हैं ? पहला लक्षण भगवत कृपा का–उसके जीवन में सत्संग आता है। सत्संग ही भगवान की पहली कृपा का लक्षण है। यह जो यदि जीवन में हम सोचें कि भगवान ने हमपर कृपा की इसका लक्षण क्या है? वे हमें सत्संग प्रदान करते हैं, ऐसे लोगों को हमारे पास भेज देते हैं जिनका साथ हमारे मन को उठाने वाला होता है। तो यह भगवान की कृपा का पहला लक्षण और जब सत्संग आया तो विवेक आता है, विवेक आने से मोह भ्रम भागता है। मोह भ्रम भागने से अनुराग उत्पन्न होता है और अनुराग उत्पन्न होने से श्रीराम मिलते हैं। यह जो पूरी प्रक्रिया अपने आप सध जाती है तो एक घटना एक बार बता दें, बहुत प्रिय घटना है वह और वहाँ पर अदभुत समन्वय गोस्वामी जी ने दिखा दिया है पुरूषार्थ और भगवत्–कृपा का। आप सुनें, प्रसंग वह है जब सेतु बंध हो रहा है रामेश्वर में। बाँधा जा रहा है सेतु। बंदर और भालु मालूम नहीं कब से परिश्रम कर रहे हैं। कितने दिन हो गये, नल और नील भिड़े हुए हैं, शिल्पी भिड़े हुए हैं और तब बहुत परिश्रम के बाद, बहुत दिनों के परिश्रम के बाद यह सेतु बनकर तैयार होता है। अब तैयार हुआ अब आये जाम्बवान प्रभु के पास और जाकर ने विनती की कि प्रभो ! बहुत परिश्रम से सेतु तैयार हुआ है, आपकी आज्ञा लेने आया हूँ, अब वाहिनी को उस पार जाने का मैं आदेश देता हूँ आपकी इच्छा से।

कहा कि हाँ ! हाँ ! जरूर दे दो। अब थोड़ा ठिठकते हैं जाम्बवान। प्रभु ने हँसते हुए पूछा कि क्या बात है ? ठिठक क्यों रहे हो ?

कहा कि महाराज ! पुल तो संकरा है, बहुत चौड़ा तो बना नहीं है। ऐसा है कि वाहिनी को पार उतरने में जरा समय तो लगेगा और फिर उसके बाद आकर हम आपको लिवा ले जाएँगे। तो प्रभु कहते हैं कि चलो, तुम लोगों ने इतना बढ़िया पुल बनाया तो हम भी जाकर देख लेते हैं और यदि कोई सहायता हो सकती है तो चलो तुम्हें कर दें। और प्रभु आते हैं। जो बन्दरों और भालुओं ने मिलकर के बनाया था, उस पुल पर आकर प्रभु खड़े हुए। और खड़े हुए तो क्या हुआ ? विलक्षण दृश्य दिखाई देता है। गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं कि तरफ जितनी दूर तक सागर दिखाई देता है प्रभु को देखने के लिए जलचर जितने भरे थे सागर में, अपना सिर उठा उठाकर के प्रभु को देखने के लिए निकल आते हैं जल से बाहर। और वहाँ पर गोस्वामीजी लिखते हैं –

"देखन कह प्रभु करूणाकंदा,
प्रकट भये सब जलचर वृंदा"

ये सारे जलचरवृंद प्रकट हो गये, आ गये। मुँह उठा–उठा करके प्रभु की ओर देख रहे हैं और जहाँ तक निगाह जाती है और प्रभु धीरे–धीरे सामने बढ़ने लगे। पुल पर जैसे–जैसे बढ़ते हैं तो सारा का सारा सागर दोनों ओर जलचरों से पट जाता है। वे टकटकी लगाकर के प्रभु के अपूर्व सौंदर्य को निहार रहे हैं। प्रभु ने जाम्बवान से हंसकर कहा–लो, तुम कहते थे यह पुल संकरा बना

है, अब देख लो, कितना चौड़ा पुल हो गया है दोनों तरफ !

क्या तात्पर्य प्रभु ?

प्रभु ने कहा कि तात्पर्य ? यह जो दिखाई दे रहा है दोनों तरफ। आँखें फाड़कर विस्मृत नेत्रों से पूछा जाम्बवान ने—इन जलचरों की पीठ को पुल कहते हैं आप ! अरे, इसपर तो कोई बानर डर के मारे पैर ही नहीं रखेगा। यदि रखा और कहीं नीचे चला गया तब तो वानर काल का ग्रास ही बन जायेगा। इसपर से कैसे जायेंगे प्रभु ?

विलक्षण है ! जीव भी विलक्षण है ! प्रभु की कृपा की बात तो करता है पर प्रभु की कृपा के पुल में विश्वास नहीं करता है। उसे लगता है कहीं बैठ न जाये, बीच में कहीं प्रभु की कृपा धोखा न दे जाये। उसको अपने पुरूषार्थ के पुल का तो बड़ा भरोसा है, सोचता है कि यह बहुत मजबूत है पर प्रभु की कृपा के पुल का भरोसा उसको होता नहीं है। यह जीव की बाध्यता है, विवशता है। क्योंकि विश्वास की कमी है और तब प्रभु हंसकर के कहते हैं कि यदि तुम्हें यही डर है कि यह पुल, कृपा का पुल बैठ जायेगा तो तुमलोग जाँचकर के देख लो। और फिर कथा आती है। कि बंदर और भालु बड़े—बड़े पत्थर के टुकड़ों से मारते हैं जलचरों को। अब ये जलचर टलते ही नहीं है, वहाँ पर यही लिखा गया है, वे तो देख रहे हैं, प्रभु को ही देख रहे हैं, सतत् देख रहे हैं। *'टरहिं न टारे'* कितनी कोशिश की उनलोगों ने उनको हटाने की, पर ये जलचर हटते नहीं है।

'टरहिं न टारे, हरषित गनं सब भये सुखारे' और सब का मन हर्षित होता है। वे सुखी होते हैं यह देखकर कि ये जो जलचर हैं, ये टले नहीं और तब प्रभु ने जाम्बवान से कहा कि अब अपनी सेना को उतार लो और तब प्रभु के साथ—साथ सारी सेना उतर जाती है उस पर। वहाँ पर गोस्वामी जी लिखते हैं कि इन तीन मार्गों से ये बंदर जाते हैं —

सेतु बंध भये भीर अति, कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर, चढ़ि—चढ़ि पारहिं जाहिं।।
सेतु बंध भये भीर अति, कपि नभ पंथ उड़ाहि।
अपर जलचरन्हि ऊपर, चढ़ि—चढ़ि पारहिं जाहिं।।

कहते हैं कि तीन प्रकार के रास्ते बन गये। कुछ बंदर थे जो उपर आकाश से उड़कर के चले गये, आकाश मार्ग से। बहुत से थे जो अपने बनाये पुल पर से गये और बहुत से थे जो जलचरों की पीठ पर से पैर रखते हुए चले गये। अब ये तीन रास्ते हैं। गोस्वामी जी का संकेत है— ये तीन ही रास्ते हैं इस पुल को पार करने के, इस सागर को पार करने के। एक तो रास्ता है ऊपर से उड़कर जाने का , उसको उन्होंने ज्ञान मार्ग कहा। एक रास्ता है अपने बनाये पुलपर से जाने का, उसको उन्होंने कर्म का मार्ग कहा और एक तीसरा रास्ता है भगवान के द्वारा बनाये गये कृपा के पुल पर से जाने का। वह भक्ति का रास्ता है। ये तीन रास्ते हैं, कोई ज्ञान मार्ग से उड़कर के चला जाये, कोई अपने बनाये हुए इस कर्म के पुल से चला जाये और कोई भगवान की कृपा के पुल पर से चला जाये और सब जब उस पार चले गये तो जाम्बवान पैरों पर लुंठित होते हैं प्रभु के और कहते हैं—प्रभु ! आप कैसे कौतुकी है ? जब आप इतना सुंदर पुल और तुरंत बना सकते थे तो इतना परिश्रम कराया बंदरों और भालुओं से, यह आप पहले ही तो करा सकते थे। समय की कितनी बचत होती! प्रभु ने कहा—जाम्बवान! यदि बंदरों और भालुओं ने यह पुल न बनाया होता तो मैं कहाँ पर खड़ा होकर अपनी कृपा का पुल बनाता ? प्रभु इतनी अपेक्षा रखते हैं कि हम उनके लिए जगह तो कर लें। वे हम पर कृपा करना चाहते हैं पर हम उनको खड़े होने की जगह भी तो नहीं देते हैं ! भीतर में जब प्रभु झाँकते हैं तो देखते हैं वहाँ तो कोई जगह नहीं है बैठने की! कितने लोग हमारे हृदय में अधिकार किए हुए बैठे हैं और प्रभु को लगता है कि मेरे लिए तो No vacancy है तो मैं जाऊँ तो

जाऊँ कैसे ? कृपा करूँ तो करूँ कैसे ? तो यह जो भगवत्कृपा का, पुरूषार्थ का अपूर्व समन्वय है वह इसके माध्यम से ध्वनित होता है, एक और उदाहरण आपके समक्ष रखूँ और फिर अपनी यह वाणी आज के लिए समाप्त करूँ। वह उदाहरण है श्रीरामकृष्ण का और बड़ा विलक्षण उदाहरण है –

हमलोगों के जीवन में एक दार्शनिक अवधारणा रहती है, एक दार्शनिक जिसे कहेगें, कि एक दार्शनिक संघर्ष की स्थिति बनी रहती है, द्वन्द्व की स्थिति, वह दार्शनिक द्वन्द्व क्या है ? जैसे हम पुरूषार्थ की बात सुनते हैं, ईश्वर की बात सुनते हैं और उसी प्रकार हम भाग्य की बात सुनते हैं, क्या ये तीनों बिल्कुल विरोधी हैं? अलग–अलग हैं ? Destiny, free will, God ये तीन आप सोचिए अपने मन में, कि God, destiny, free will. Free will कहने से इच्छा स्वातंत्र्य, पुरूषार्थ, God कहने से ईश्वर कृपा, भगवत कृपा, Destiny कहने से भाग्य ये तीनों बिल्कुल अलग मालूम पड़ते हैं। इनमें क्या कहीं कोई समन्वय हो सकता है ? जैसे पाश्चात्य दर्शन है। किसी भी दर्शन को हम पढ़ेंगे तो कोई समन्वय वे कर नहीं पाते हैं। Distiny कहें तो Distiny अपनेआप एक प्रमुख तत्व है। अगर हम ईश्वर कृपा कहें तब तो और किसी को मानमे की आवश्यकता नहीं। और इच्छा स्वातंत्र्य को मानते हैं, Free will को मानते हैं तब तो इन दोनों को मानने की आवश्यकता नहीं।

एक बार नरेन्द्र नाथ ने तर्क किया। नरेन्द्रनाथ माने स्वामी विवेकानन्द। नरेन्द्रनाथ ने तर्क किया अपने गुरू रामकृष्ण परमहंस से, जो शिक्षित नहीं थे और सामान्य अर्थों में अपढ़ ही थे। परन्तु उनकी बुद्धि कितनी सजग थी, कितनी तीक्ष्ण थी ? अन्ततोगत्वा तर्क में भी नरेन्द्रनाथ देखते हैं कि मैं पराजित हो रहा हूँ। श्रीरामकृष्ण तर्क में भी पराजित कर देते थे, ऐसी विलक्षण स्थिति थी ! जैसे एक सामान्य सी बात कहें–नरेन्द्रनाथ ने एक दिन कहा, भागवत का पाठ चल रहा था – ये क्या आप भागवत का पाठ कराते हैं, सब मिथ्या है, कपोल कल्पित है, न गोपियाँ थीं, न कृष्ण थे, यह सब भी कोई बात है ? .....किसी ने भागवत लिख दिया और आप भागवत पढ़ते हैं और ये सब कहते हैं ! नरेन्द्रनाथ का ऐसा तार्किक भाव ! कालान्तर में वे जब स्वामी विवेकानन्द बने, कृष्ण के चरणों में लुण्ठित होते हैं, गोपी प्रेम का एक गान करते हैं और कहते हैं–इससे उदात्त भाव हो नहीं सकता। यह विवेकानन्द कहते हैं। पर उस समय तो नरेन्द्रनाथ थे, तार्किक थे, कहते थे–ये सब नहीं है और नरेन्द्रनाथ तर्क में उलझ पड़े श्रीरामकृष्ण से। कहा–महाराज ! ये क्या आपने लगा रखा है ? ये सब कल्पना की बातें ये सब नहीं हैं बिल्कुल। जो नहीं है उनको लेकर क्या लाभ ? श्रीरामकृष्ण ने कहा– अच्छा ! ठीक है बेटा ! तूं इतना तो मानता है कि भागवत नाम का ग्रंथ है। ठीक है, कृष्ण नहीं थे, गोपियाँ नहीं थीं और ये सब काल्पनिक हैं पर यह भागवत ग्रंथ तो मानता है ? क्यों मानूँगा ? दिखाई दे रहा है। अच्छा जब भागवत ग्रंथ मानता है तो यह भी तो मानता है कि उसका कोई लेखक रहा होगा ? वह तो मानना ही पड़ेगा। जब ग्रंथ है तो उसका कोई लेखक भी होगा। अच्छा, जब भागवत ग्रंथ का कोई लेखक है तो यह तो मानता है कि इस भागवत में, इतने उदात्त प्रेम के भाव हैं, भले ही इतिहास की दृष्टि से कृष्ण रहे या न रहे हों, गोपियाँ रही हों, न रही हों, पर यह जो उदात्त प्रेम का भाव है यह सारा का सारा भाव इस भागवत ग्रंथ के लेखक के हृदय में आया होगा– यह तो मानता है। नरेन्द्र ने कहा– यह तो मानूंगा ही, तभी तो उसने ग्रंथ लिखा है। अरे, तब तो सत्य हो ही गया न ! अरे किसी के हृदय में ये भाव जब आ ही गये, इतने प्यार के उदात्त भाव अगर आ सकते हैं किसी व्यक्ति के जीवन में, तब तो भागवत सत्य ही हो गया तो क्यों मानता है कि यह मिथ्या है ? निरूत्तर ! ऐसे तीक्ष्ण बुद्धिवादी

थे श्रीरामकृष्ण ! अब जब भक्तों ने पूछा—नरेन्द्रनाथ इनमें प्रमुख थे – "महाराज ! इसमें हम मेल कैसे बिठायें ? God, destiny, free will में और एक सुन्दर उदाहरण दे देते हैं श्रीरामकृष्ण बहुत विलक्षण !

एक छोटा सा उदाहरण हमने कल दिया था कला मंदिर में, वह डॉ० राधाकृष्ण का उदाहरण, फिर से उसे दुहरा देते हैं। यह उसके सम्बन्ध में, जिसको हम भाग्य कहते हैं और पुरूषार्थ कहते हैं। डॉ0 राधाकृष्णन ने उदाहरण दिया – जैसे हम ताश खलने के लिए बैठे हैं और ताश खेलते समय जो पत्ते हमारे पास आ गये तो भाग्य है, और इन पत्तों से हम खेल कैसा खेलेंगे, वह पुरूषार्थ है। यह तो समन्वय उन्होंने किया कि ठीक है, खेलते समय जो पत्ते आये भाग्य से आये, परिस्थितियाँ आयीं। हमें जो परिस्थितियाँ मिली हैं भाग्य से मिली हैं पर उन परिस्थितियों का सदुपयोग हम कैसा करते हैं, यह हमारे पुरूषार्थ की बात है तो ये दोनों बातें सत्य हैं। तो इसी प्रकार यहाँ पर श्रीरामकृष्ण कहते है God, destiny और free will इनका समन्वय साबित करते हुए, "देखो ! एक चरवाहा एक गाय को ले जाता है चराने के लिए जंगल में। गाय एक लम्बी रस्सी से बँधी हुई है। तो लम्बी रस्सी है इसलिए मोड़ देता हे, आधी कर देता और उसके छोर को किसी पेड़ से बाँध देता है और स्वयं चरवाहा किसी वृक्ष की छाँव में लेटकर के बाँसुरी बजा रहा है। अब यह जो गाय है, गाय स्वतंत्र भी है और परतंत्र भी है।" कैसे ? श्रीरामकृष्ण ने कहा – "अगर रस्सी की लम्बाई पचास फुट है तो पचास फुट के घेरे में घास चरने के लिए गाय स्वतंत्र है। चाहे तो वृक्ष से एक फुट दूरी की घास चरे, दो फुट दूरी की, पचास फुट दूरी की तो पचास फुट के घेरे में जितनी घास है, उसको चरने में गाय स्वतंत्र है। पर परतंत्र कहाँ पर है ? पचास फुट घेरे के उसपार की घास चरना चाहे तो नहीं चर सकती, बँधी हुई है।" अब कहते हैं श्रीरामकृष्ण–"वह जो गाय है उसको जो पचास फुट के घेरे में स्वतंत्रता मिली है, उसका सदुपयोग करती है। घास चरना शुरू करती है। चरते–चरते सारी घास चर ली, रंभाती है। उठकर के देखा चरवाहे ने–अरे ! गाय ने तो सारी घास चर ली है, आया, रस्सी को और लम्बी बना देता है खोलकर के, अब अधिक बड़े घेरे में गाय स्वतंत्र हो जाती है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं–वह जो चरवाहा है, उसको तुम ईश्वर जानो। यह जो रस्सी की लम्बाई है, उसे तुम destiny जानो, भाग्य जानो। यह वे कहते हैं और उसी प्रकार यह जो कहा है कि गाय घास चरती है, अपना पुरूषार्थ व्यक्त करती, यही इच्छा स्वातंत्र्य है। अब यदि वह जो गाय है, घास न चरे, थोड़ा सा यहाँ मुँह मारे, थोड़ा सा वहाँ मुँह मारे और उसके बाद रंभाये। चरवाहा उठकर के देखे–अरे ! बहुत सी घास बाकी है ? आता नहीं है। वह रस्सी को लम्बी नहीं बनाता है तो गाय वैसी ही बाँधी रहेगी... जब गाय अपनी मिली स्वतंत्रता का सदुपयोग करके पूरी घास चर लेती है तो चरवाहा आकर के रस्सी को और लम्बी कर देता है, उसे अधिक घेरे में स्वतंत्र बना देता है। तो इसी प्रकार यह जो जीव है न ! यह बँधा भी है और स्वतंत्र भी है। एक घेरे तक वह स्वतंत्र है, उस घेरे के बाद बँधा है। यह destiny जिसको हम भाग्य कहते हैं। तो भाग्य के जिस घेरे में हम स्वतंत्र है, उस घेरे में यदि हम पूरा अपना पुरूषार्थ व्यक्त करें, उस स्वतंत्रता का सदुपयोग करें तो क्या करते हैं ? भगवान आकर के हमारे घेरे को बड़ा कर देते हैं। यह ईश्वर कृपा का पक्ष है तो पुरूषार्थ भी हो गया और उसके साथ भाग्य भी आ गया और उसके साथ यह ईश्वरकृपा का भी पक्ष आ गया। यह अद्‌भुत समन्वय है ! ऐसा समन्वय न तो मैंने किसी ग्रंथ में पढ़ा और न तो किसी के मुख से सुना, जहाँ पर ये तीनों समन्वित हो जाते हैं। God Destiny Free... तीनों सत्य हैं। ऐसा नहीं कि एक को काटो, दूसरे को ग्रहण करो, तीनों सत्य हैं और तीनों

अपने–अपने स्थान पर, अपनी–अपनी उपयोगिता हमारे समक्ष रखते हैं। Destiny भी सत्य, हम उसके द्वारा बँधे हैं। पर इसका मतलब कि उतने घेरे में हम स्वतंत्र हैं, अब उस स्वतंत्रता का उपयोग करना हमारे Free Will पर निर्भर करता है। यही पुरूषार्थ है और जब हम उसमें पुरूषार्थ भरपूर करते हैं तो ईश्वर की कृपा होती है। जिसका हमने अभी तक विवेचन किया है कि पुरूषार्थ करने से भगवान की कृपा होती है तो जीवन के ये जो सत्य हैं इन सत्यों को हम ग्रहण किस प्रकार से करें कि हम जिस स्थिति में भी हैं, हम भरपूर पुरूषार्थ व्यक्त करें और फल के लिए ईश्वर की कृपा पर छोड़ दें। यदि यह समन्वय, यह समीकरण हमारे जीवन में आता है तो तनाव पैदा नहीं होते। जीवन में शान्ति बनी रहती है। गीता का कर्मयोग हमारे जीवन में उतरता है और यदि इसको हम नहीं कर पाते तो तनाव होते हैं कि हम कार्य तो करते हैं पुरूषार्थ और अगर फल अनुकूल नहीं मिला तो हम जीवन में अत्यन्त विषमता से युक्त हो जाते हैं और हम देखते हैं कि हमारी हालत कैसी हो जाती है। आज तो स्थिति महा भयावह है। आज तो हम देखते हैं जैसे एक एस० डी० रॉय की किताब मैं पढ़ रहा था, बहुत अच्छी किताब है जिसका नाम है The Medicine and the Mind. बहुत पुरानी किताब है। उसमें उन्होंने यह लिखा है कि आज मनुष्य इतने तनाव से ग्रस्त हो गया है कि वह drug addict होता जा रहा है। ट्रांकुलाइजर्स लेता है। किसके लिए ? नींद तो आती नहीं है तो नींद लाने के लिए वह गोलियाँ लेता है, नींद की गोलियाँ खाता है। यह किताब माने 67 में प्रकाशित हुई। एक सर्वेक्षण कराया वहाँ पर रॉल्स ने और उस सर्वेक्षण में यह देखा, उस समय लिखा था, The sale of tranquilizers sold to 150 millions dollars यह तब की बात है 1966 की। और केवल अमेरिका में और Millions more were spent on alcohol और वे एक प्रश्न पूछतेहैं ? Does the chemist hope to dispense happiness in pills? क्या chemists (रसायनज्ञ, औषध विक्रेता) कि सुख को नींद की गोलियों में भरकर के बाँटेगा ? कि जैसे हम दुकान पर गये chemist से कहा–जरा सुख की गोलियाँ दे दीजिए। दो गोली खा ली, सुख मिलने लगा। जैसे यह तो हो नहीं सकता है। तो ये जो तनाव हैं जीवन के, ये मन से सम्बन्धित हैं। गोलियों से दूर नहीं होते हैं। थोड़ी देर के लिए दब जाते हैं। पर जब उभरते हैं उतनी तीव्रता के साथ, उतनी ही प्रतिक्रिया के साथ। ये जो नशे की लत है उसका यह जो चक्र चला हुआ है बहुत खराब है। यह तो आप सभी जानते हैं आप सभी पढ़ते हैं। अभी जैसे कुछ समय पहले [illegible] नामक magzine में पढ़ रहा था नशाखोरी की लत की दवा के व्यसन पर उसमें चौदह पन्ने हैं। एक तो बारीक–बारीक टाइप और चौदह पृष्ठ, केवल उसपर है drug addiction पर और इसमें दिया हुआ है drug addiction कितना वीभत्स हो गया है और यह भी दिया हुआ है कि जैसे छोटे–छोटे बच्चे हैं, सर्वेक्षण किया गया अमेरिका का। उसमें यह दिया हुआ है कि बारह वर्ष से लेकर सोलह वर्ष के बच्चों तक का एक सर्वेक्षण किया कि नशाखोरी का तो 63% (तिरसठ प्रतिशत) बच्चे ऐसे हैं जो किसी न किसी प्रकार की नशा का सेवन करते हैं। Tranquilizer (प्रशान्तक) भी drug में आता है, tranquilizer को भी drug कहेंगे, नींद की गोली। तो अगर 63 प्रतिशत बच्चे, बारह से सोलह उमर के बीच के यदि drug addict हो गये हैं, नींद की गोली खाने के आदी हो गये हैं। आप भयावहता की कल्पना कर सकते हैं। भारत में भी आ रहा है, आ गया है और आप देखते हैं कई सम्पन्न घर हैं जहाँ पर यह विभीषिका आ गयी है। तो आखिर [illegible] पर तात्पर्य क्या हुआ ? कहने का तात्पर्य यह है कि यह जो भारतीय संस्कृति पद्धति हमारे जीवन की है। यह एक विलक्षण पद्धति है। हम कर्म करें पूरी कर्मठता के साथ, पुरूषार्थ के साथ और ईश्वर को यदि हम साथ में लेकर के चलें तो जितने तनाव हैं, सब उनके चरणों में चले जाते हैं। यह जो विष है उसका विष सोख लिया जाता है। इसीलिए यह जो भगवत्कृपा और

पुरूषार्थ, यह जो विषय आपके समक्ष विवेचन के लिए लिया गया तो इसका मतलब यही है कि जीवन में हम पुरूषार्थ भरपूर करें, भगत्कृपा का आहरण अपने आप होगा। वह पुरूषार्थ ही भगवतकृपा को खींचकर के ले आयेगा। ऐसा नहीं कि ईश्वर हमपर कृपा करेंगे। निठल्लों पर जब भाई, पिता, माता ही कृपा नहीं करते तो ईश्वर कौन कृपा करेगा ? आप निठल्ला बैठकर के देखिए घर में, अगर कोई unemployed (बेरोजगार) होकर के बैठा हो, और कोई कुछ काम न करता हो, बेरोजगार छोड़ दीजिए कि ठीक है आपके घर में धंधे हैं, एक भाई चुपचाप बैठा रहता है, अरे माँ को भी वह फूटी आँख नहीं सुहाता है, ईश्वर को क्यों सुहायेगा ? तो ईश्वर चाहते हैं पुरूषार्थ। पुरूषार्थ करे और वृत्ति क्या रहे ? एक समर्पण की वृत्ति यदि बना सके, प्रभो ! यह जो तुम पुरूषार्थ मुझे देते हो, शक्ति देते हो, तुम्हारी ही शक्ति से मैं पुरूषार्थ करता हूँ, तुम्हारे ही बल से बलवान होकर मैं जीवन के कर्म करता हूँ। तुम मुझपर कृपा करो यदि यह भाव बना रहा तो आप देखेंगे आपके कर्म की क्वालिटी बदल जायेगी। बहुत बढ़िया कर्म होगा। अभी मैं कर्म कर रहा हूँ यह भाव है तो मैं कर्म कर रहा हूँ, वह कर्म की क्वालिटी में जरा दोष ला देता है, खोट ला देता है। पर हम यदि पुरूषार्थ व्यक्त करेंगे भरपूर, अगर असफल हुए तो फिर से। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—यदि तुम निन्यानबे बार असफल होते हो तो एक बार और पुरूषार्थ करके देखो ! विलक्षण है उनका संदेश ! यदि तुम निन्यानबे बार असफल होते हो, एक बार और करो, शायद यही तुम एक बार करोगे और सफल हो जाओगे। जैसे हम एक पत्थर को तोड़ रहे हैं, हमने निन्यानबे चोट कर दी है, अरे बहुत कड़ा पत्थर है, टूट नहीं रहा है। स्वामी जी कहते हैं—अरे भूल क्यों रहे हो ? शायद सौवीं चोट ही उसे तोड़ने वाली होगी और तुम अपने लक्ष्य के इतने करीब होगे और तुम एक बार न करोगे तो तुम लक्ष्य से बहुत दूर चले जाओगे, इसलिए हारो नहीं, पुरूषार्थ करो और प्रभु की कृपा को हृदय में बनाकर के रखो। यह उनका जो समन्वय है, समीकरण है, यह हर सब लोगों को दिशा प्रदान करता है। आज यहीं पर चर्चा का समापन करें।

हरि ॐ तत्सत्।

मोक्ष की आकांक्षा

गौतम बुद्ध एक गाँव में ठहरे। एक व्यक्ति उनके पास आया और बोला 'आप रोज कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति मोक्ष पा सकता है, लेकिन फिर हर व्यक्ति पा क्यों नहीं लेता ?'

बुद्ध मुस्कराये और बोले—'मित्र, एक काम करो। संध्या को गाँव में जाना और सब लोगों से मिल कर जानना कि वे क्या पाना चाहते है।'

वह व्यक्ति गाँव में गया और हर एक से मिल कर, उसकी पहली आकांक्षा के बारे में पूछा। शाम को वापस बुद्ध के पास लौटा, तो बुद्ध ने पूछा कि पूरे गाँव में कितने लोग मोक्ष की आकांक्षी हैं। उस व्यक्ति ने हैरानी के साथ बताया कि गाँव में एक भी आदमी मोक्ष की आकांक्षा नहीं रखता।

बुद्ध बोले—'मैं पुनः कहता हूँ कि हर व्यक्ति मोक्ष को पा सकता है, बशर्ते वह वास्तव में पाना चाहता हो।'

—मनीष सोनी

❋ दीन दुःखियों के भगवान् ❋

स्वामी नित्यज्ञानानन्द, बेलुड़ मठ

'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' ही अवतार पुरुषों का आविर्भाव होता है। उनके सभी कार्य दूसरों के लिए अनुष्ठित होते हैं। मानव–समाज के प्रति, खासकर दीन–दुःखियों के प्रति, पतित–असहायों के प्रति उनके हृदय में जो असीम करूणा एवं सहानुभूति होती है उसका आभास पाना हम साधारण लोगों के लिए असंभव है। दूसरों के दुःख–कष्टों को दूर करने के लिए वे सभी प्रकार के कष्टों को सहर्ष स्वीकार करते हैं, अपने जीवन का बलिदान तक कर देते हैं। इस भभारतभूमि की अधर्म के हाथों से रक्षा करने तथा आसुरी शक्तियों के अत्याचार से जनसाधारण को मुक्त करने के लिए राम तथा कृष्ण को कितने कष्ट उठाने पड़े थे! दूसरों के दुःख को दूर करने के उपाय ढूँढ़ निकालने के लिए भगवान बुद्ध को राजप्रासाद त्यागकर वन में भिक्षु का वेश धारण कर कितनी कठोर साधनाएँ करनी पड़ी थीं! तथा ईश्वरपुत्र ईसामसीह दूसरों का दुःख अपने हृदय में धारण कर सूली पर चढ़ गयेथे! उसी तरह दीन–दुःखी मानवों के पाप–ताप को अपने अन्दर ग्रहण कर करूणावतार भगवान श्रीरामकृष्ण को अपने जीवन की बलि देनी पड़ी थी।

सतत समाधिमग्न श्रीरामकृष्ण दूसरों के दुःख को दूर करने के लिए कितने व्याकुल रहते थे, दीन–दुःखियों के प्रति उनके हृदय में कैसी अपार करूणा तथा असीम सहानुभूति थी–इसकी थोड़ी सी झलक हमें उनके जीवन–चरित को पढ़ने से मिलती है। बैद्यनाथ–धाम में दरिद्रनारायण–सेवा की बात तो सर्वविदित है। मथुरबाबू (दक्षिणेश्वरकाली मन्दिर की प्रतिष्ठात्री रानी रासमणि के जामाता मथुरा मोहन विश्वास) के साथ वाराणसी, वृन्दावन आदि तीर्थ जाते समय बैद्यनाथ–धाम के समीपवर्ती किसी गाँव के भीतर से गुजरते हुए वहाँ के निवासियों की दुःख–दुर्दशा को देखकर श्रीरामकृष्ण का हृदय करूणा से पूर्ण हो उठा। उन्होंने मथुर बाबू से कहा, "तुम तो माँ(जगदम्बा) के दीवान हो इन सबको सिर पर डालने के लिए तेल तथा प्रत्येक को एक–एक वस्त्र दो तथा पेट भर इन्हें एक दिन भोजन करा दो।" यह सुनकर मथुर बा थोड़ा हिचकिचाने लगे तथा बोले, "बाबा, तीर्थो में बहुत खर्च उठाना पड़ेगा। इन लोगों की संख्या भी अधिक है, इन लोगों के भोजनादि की व्यवस्था करने से आगे के लिए रूपये की कमी पड़ सकती है। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए–यह आप ही बताएँ ?" लेकिन उ बात कौन सुने? ग्रामवासियों का दुःख देखकर श्रीरामकृष्ण के नेत्रों से उस समय अविरल अश्रु धारा बह रही थी, उनका हृदय करूणा से भर गया था। उन्होंने कहा, "दूर हो मूर्ख, मुझे तेरे काशीधाम नही जाना है। मैं इन्हीं लोगों के समीप रहूँगा; इनके कोई भी नहीं हैं, इन्हें छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा।" यह कहकर वे उन गरीबों के बीच में जाकर बैठ गये। अन्त में मथुर बाबू को कलकत्ते से रूपये मँगवाकर सब व्यवस्था करनी पड़ी। किसी दूसरे समय भ्रमणार्थ मथुर बाबू के साथ राणाघाट के समीपवर्ती उनकी जमींदारी के अन्तर्गत किसी गाँव में उपस्थित हो वहाँ के लोगों की भी दुर्दशा को देखकर श्रीरामकृष्ण के मन में इसी प्रकार की करूणा का भाव उदित हुआ था तथा मथुर बाबू के द्वारा उस समय भी उन्होंने इस तरह की व्यवस्था करवायी थी।

दीन-दुखियों, पतित असहायों के प्रति श्रीरामकृष्ण की अहेतुक दया थी। दक्षिणेश्वर में एक नामगोत्रहीन माली था जो सबकी उपेक्षा का पात्र था। अनाथशरण श्रीरामकृष्ण उस पर कृपा की थी। इसी तरह उनकी कृपा से धन्य हुआ था हीनवृत्ति, अछूत रसिक मेहतर। पितृ-परिचय हीन तथा घृणा-पात्री वेश्या-कन्या नटी विनोदिनी के हृदय में पतितपावन श्रीरामकृष्ण ने जला दिया था चैतन्य का प्रदीप। उनकी असीम एवं अहेतुक कृपा से शराबी तथा चरित्रहीन गिरीष घोष बन गया भक्त भैरव। कुष्ठ रोग से पीड़ित एक असहाय एवं दीन-हीन व्यक्ति की करूण प्रार्थना से द्रवीभूत हो दयामय श्रीरामकृष्ण ने अपने दिव्य-स्पर्श से उसे कर दिया था रोग मुक्त। ऐसे अजस्र दृष्टान्त उनके जीवन में हैं। शोक-ताप-दग्ध मानव के अन्दर उन्होंने किया था शांति का संचार, सुनाई थी सान्त्वना एवं आशा की वाणी। ऐसी ही दीन-दुःखियों में एक थीं गोपाल की माँ। इस संतानहीन विधवा ब्राह्मणी के अपूर्ण स्वप्न को श्रीरामकृष्ण ने पूर्ण कर दिया था। ब्राह्मणी जीवन्त बाल-गोपाल को अपने हृदय से लगाकर धन्य हो गयी थीं, कृतार्थ हो गयी थीं।

धर्मपिपासुओं की धर्मपिपासा मिटाने के लिए तथा गहन अज्ञानान्धकार में भटकते हुए भोगासक्ति के गहरे कुएँ में गिरकर हाहाकार करते हुए दुर्बल मानवों का उद्धार करने के लिए श्रीरामकृष्ण कलकत्ते की गली-गली में अयाचित रूप से करूणा-परवश होकर जाते थे। लेकिन इससे भी उनकी तृप्ति नहीं होती थी तथा वे दुःख प्रकट करते हुए कहा करते थे," चैतन्य महाप्रभु घर-घर जाकर हरिनाम-वितरण किया करते थे, आचाण्डाल सबका उद्धार किया करते थे और मेरा शरीर कितना कोमल है कि मैं बिना गाड़ी के कहीं जा भी नहीं सकता हूँ।" इतनी व्याकुलता उनके अन्दर थी लोगों का उद्धार करने हेतु!

दक्षिणेश्वर में तथा अन्तिम समय काशीपुर में सदा धर्मपिपासुओं का ताँता उनके यहाँ लगा रहता था और वे अपने सुख-दुःख की बात भूलकर सदा उनका कल्याण करने के लिए तैयार रहते थे। स्वामी सारदानन्द जी ने लिखा है-"लोक-शिक्षा प्रदान के अत्यधिक परिश्रम से शरीर के अवसन्न होने पर भी श्रीरामकृष्ण के मन का उत्साह कभी घटा नहीं था। अधिकारी व्यक्ति उपस्थित होते ही वे न जाने कैसे अपने हृदय में इसे समझ जाते थे और किसी एक अलौकिक शक्ति के आवेश से अपने को भूलकर उसे उपदेश प्रदान तथा स्पर्श करके उसकी आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग उन्मुक्त कर देते थे। इस तरह शरीर त्याग के अन्तिम क्षण तक अनुष्ठान करते रहे।" काशीपुर में कल्पतरू होने की घटना तो सर्वविदित है। उस दिन उन्होंने अपनी कृपा का भंडार खोल दिया था। दूसरों के दुःख-कष्ट, पाप-ताप को ग्रहण कर शुद्ध सत्वदेहधारी श्रीरामकृष्ण को भयीषण रोग-यातना सहनी पड़ी थी और इसी से उनके जीवन का अवसान भी हो गया था। रामकृष्णनन्द जी ने कहा था -" जगत् का दुःख देखकर ईसा मसीह सूली पर चढ़े श्रीरामकृष्ण ने भी जीवों के दुःख को ग्रहण कर रोग-यंत्रणा का भोग किया था।" श्रीरामकृष्ण की कृपा का अन्त न पाकर भक्त भैरव गिरीश चन्द्र ने कहा था-" यदि पहले जानता ऐसे पतितपावन दयालु ठाकुर आने वाले हैं जो थोड़ा पाप और कर लेता।"

अपने द्वारा प्रवर्तित जीवोद्धार-कार्य को चालू रखने के लिए अपनी लीला सहधर्मिणी श्री माँ सारदादेवी तथा प्रधान शिष्य नरेन्द्रनाथ का जीवन अपूर्वभाव से गठित कर उनके ऊपर अपने अपूर्ण कार्य का भार सौंप गये। एक दिन नरेन्द्रनाथ ने जब उनसे शुकदेव की तरह सदा समाधि में डूबे रहने की अपनी इच्छा व्यक्त की तो श्रीरामकृष्ण प्रसन्न होने के बदले नरेन्द्रनाथ को धिक्कारते हुए कहा -"छिः छिः तू इतना बड़ा

आधार और तेरे मुहँ से ऐसी बात! मैंने सोचा था कहाँ तू एक विशाल वटवृक्ष के सदृश होगा, तुम्हारी छाया में हजार-हजार लोग विश्राम पायेंगे और वैसा न होकर तू केवल अपनी मुक्ति चाहता है! यह तो अत्यन्त तुच्छ बात है! नही रे, इतनी छोटी दृष्टि मत रख।" इस प्रकार के तिरस्कार से नरेन्द्रनाथ की आँखों से अजस्र अश्रुधारा बहने लगी और इसी अश्रुधारा से नरेन्द्रनाथ का कोमल हृदय प्लावित होकर भावी विवेकानन्द के महान् हृदय में परिवर्तित हो गया। अपने शरीर त्याग के पूर्व एक दिन काशीपुर में श्रीरामकृष्ण ने माँ सारदा देवी से कहा था-"देखो, कलकत्ते के लोग मानो अँधकार में कीड़े की तरह कुलबुला रहे हैं। तुम उनको देखना।" श्री माँ ने जब करूण स्वर में कहा-"मैं तो स्त्री हूँ। यह कैसे होगा ?" श्रीरामकृष्ण ने अपने शरीर की ओर इंगित करते हुए कहा -"आखिर इसने क्या किया है ? तुम्हें इससे बहुत ज्यादा करना होगा।" नरेन्द्रनाथ और माँ सारदा देवी ने दीन-दुःखी, असहाय मानव-जाति के लिए क्या किया- आज इतिहास इसका साक्षी है।

अंत में श्रीरामकृष्ण ने दीन-दुःखी, दरिद्र, अशिक्षित तथा अज्ञानान्धकार में भटक रहे मानव-जाति की सेवा के लिए रामकृष्ण संघ की स्थापना की तथा 'शिव ज्ञान से जीव-सेवा' का मूल मंत्र इसे प्रदान किया। आज भी यह संघ श्रीरामकृष्ण प्रदत्त मूल मंत्र का अनुसरण करते हुए 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' पूर्ण समर्पित है।

प्रभु की आपार करूणा तथा मानव-जाति के प्रति उनकी असीम सहानुभूति की याद कर हम भी प्रभु के दिव्य कार्य में अपना तन-मन-धन समर्पण करें। प्रभु हमारे सहायक हैं। श्रीरामकृष्ण ने इस अनित्य संसार का त्याग नहीं किया, बल्कि असहाय, आर्त, शोक-ताप-दग्ध दुःखी मानव के पास खड़े होकर उन्हें सुनाई सान्त्वना एवं आशा की वाणी, उनके जीवन में किया चैतन्य का संचार। अतएव यदि हम उनके कार्य के लिए अपना जीवन समर्पण करें, तो हम पर अवश्य प्रसन्न होंगे, हम पर अवश्य कृपा करेंगे। करुणावतार, दीन-दुःखियों के भगवान श्रीरामकृष्ण देव की जय हो। ■

स्वयंको छोड़ो

एक राजा था। उसने परमात्मा को खोजना चाहा। वह किसी आश्रम में गया। उस आराम के प्रधा साधु ने कहा, 'जो कुछ तुम्हारे पास है, उसे छोड़ दो, परमात्मा को पाना बहुत सरल है।' राजा ने यही किया। उस राज्य छोड़ दिया और अपनी सारी सम्पति गरीबों में बांट दी। वह बिल्कुल भिखारी बन गया,लेकिन साधु ने उ देखते ही कहा,'अरे, तुम तो सभी कुछ साथ ले आये हो।' राजा की समझ में कुछ नहीं आया, पर वह बोला नह साधु ने आश्रम के सारे कूड़े-करकट को फेंकने का काम उसे सौंपा। आश्रमवासियों को यह बड़ा कठोर लगा, कि साधु ने कहा-'सत्य को पाने के लिए राजा अभी तैयार नहीं है और इसका तैयार होना तो बहुत ही जरुरी है कुछ दिन और बीते। आश्रमवासियों ने साधु से कहा कि अब वह राजा को उस कठोर काम से छुट्टी देने के लि उसकी परीक्षा लेले। साधुबोला 'अच्छा'। अगले दिन राजा जब कचरे की टोकरी सिर पर लेकर गांव के बाहर फेंक जा रहा था तो एक आदमी उससे रास्ते में टकरा गया। राजा बोला, 'आज से पन्द्रह दिन पहले तुम इतने अ नहीं थे।' साधु को जब इस बात का पता चला तो उसने कहा, 'मैंने कहा था न कि अभी समय नहीं आया है। अभी वहीं है। कुछ दिन फिर राजा से कोई राहगीर टकरा गया। इस बार राजा ने आंखें उठाकर उसे सिर्फ देख पर कहा कुछ भी नहीं। फिर भी आंखों ने जो भी कहना था, कह ही दिया। साधु को जब इसकी जानकारी मि तो उसने कहा, 'सम्पति को छोड़ना आसान है पर अपने को छोड़ना कितना कठिन है।' तीसरी बार यही घट हुई। इस बार राजा ने रास्ता में बिखरे कूड़े को बटोरा और आगे बढ़ गया, जैसे कुछ हुआ ही न हो। उस दि साधु बोला, 'अब यह तैयार है। जो खुदी को छोड़ देता है, वही प्रभु को पाने

राम का व्यक्तित्व

श्री रामकिंकर उपाध्याय

मानस मर्मज्ञ पंडित रामकिंकरजी उपाध्याय को कौन नहीं जानता ? रामचरित मानस पर उनके अपूर्व प्रवचनों को जो भी सुनता है वह विस्मित–विमुग्ध हुए बिना नहीं रह पाता है। वे जो भी अर्थ निकालते हैं उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे रामचरितमानससरोवर से बहुत गहराई में गोता लगाकर मोती बिखेरते हैं। भक्तों को यह लेख रुचेगा, यह आशा है – सम्पादक

वर्षा की अंधकारभरी रातों में जुगनू की सक्रियता दर्शनीय होती है। क्षुद्र–से इस जन्तु को पंख और प्रकाश दोनों उपलब्ध है। गति और प्रकाश का समन्वय, फिर और क्या चाहिए? पर तुलसी को ये बिल्कुल नहीं भाते। उनके राम ने जुगनू को दंभ के प्रतीकार्थों में देखा।

निशि तम घन खद्योत विराजा ।
जनु दंभिन कर जुरा समाजा ।।

जुगनू में प्रकाश की अल्पता है तो उसका क्या दोष ? क्या लघुता ही उसको निन्द्य बना रही है? कहा जाता है, राम तो छोटों के प्रति बड़े उदार हैं। तुलसी ने उनके इस गुण को कितनी बार सराहा है। पर राम जुगनू पर कटाक्ष करते हैं। क्यों ? राम उदार हैं, वे अन्धकार को क्षमा कर सकते हैं। प्रकाश के तो वे वंशधर ही हैं। पर जुगनू उन्हें आलोचना के लिए बाध्य करता है।

सद्गुण यदि प्रकाश है तो दुर्गुण अन्धकार, पर यह दंभ, जो दोनों से भिन्न है और भ्रान्ति उत्पन्न कर देता है, उसे पहचानना लोक कल्याण के लिए आवश्यक है। अशोक–वाटिका में तपस्विनी सीता ने जगद्विजेता रावण की तुलना जुगनू से कर दी तो वह क्रुद्ध होकर तलवार निकाल लेता है।

आपुहिं सुनि खद्योत सम रामहिं भानु समान
परुष वचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसियान

'राम सूर्य, रावण जुगनू' कैसी विपरीत अतिशयोक्ति से भरी तुलना है, रावण सोचता है। रावण में हजार दोष हों, पर उसकी तेजस्विता को की किसी ने नहीं नकारा। सूर्य और चन्द्र भी जिसके समक्ष तेजहीन होते प्रतीत होते हों उसे पहली बार तुच्छ जुगनू कह दिया गया।

तब बल नाथ डोल नित धरनी ।
तेजहीन पावक शशि तरणी ।।

रावण जुगनू में छिपे गूढ़ार्थ को हृदयङ्गम नहीं कर पाया। जुगनू और सूर्य की तुलना का तात्पर्य केवल प्रकाश की मात्रा पर निर्भर न होकर प्रकाश के उद्देश्य को मुख्यता देना है। एक सद्गुण–सम्पन्न व्यक्ति में जो क्रिया [illegible] हम पाते हैं वही दंभी व्यक्ति द्वारा भी सम्पन्न होते हैं।

गुण और दोष की इस समस्या को तुलसी ने बड़ी अन्तरङ्गता से देखा।

साधारणतया समझा जाता है कि गुण का तात्पर्य है एक व्यक्ति में दिखाई देने वाला वह वैशिष्ट्य जो उसे अन्य साधारण व्यक्तियों से भिन्न बना देता है। जुगनू की चमक उसकी विशिष्टता ही है। अब यदि प्रकाश को गुण का प्रतीक मान लें, तो उसमें सद्गुण देखना होगा। पर तुलसी की मान्यता है कि गुण वह नहीं जो एक व्यक्ति की ऊँचाइयों को प्रदर्शित करें; अपितु उस गुण के प्रकाश में वह औरों को क्या देता है, यह उसकी वास्तविक कसौटी है। जुगनू केवल चमक कर अपने व्यक्तित्व को चमकाता है। उसके प्रकाश से अन्य कोई लाभ नहीं है। प्रकाश, जिसे हम वास्तविक अर्थों में प्रकाश कह

सकें सूर्य में है। वह निकलता है, तो प्रकाश फैला देता है। स्वयं उसकी चमक को हम कुछ क्षणों तक सीधी आँख से देख भी नही सकते। मानो वह सन्देश देता है–जाओ, अपना काम करो, मुझे क्या देख रहे हो ? जुगनू की आँखमिचौनी को आप घण्टों देखते रहिए। वह चाहता भी यही है। उसका प्रकाश, उसकी गति–स्फूर्ति का नर्तन आत्म–प्रदर्शन के लिए ही है, दूसरों को प्रकाश देने के लिए नहीं। दंभी व्यक्ति का उद्देश्य भी सद्गुणों द्वारा आत्मख्याति एवं स्वयं की पूजा मात्र है। जुगनू अन्धकार से प्रेम करता है, क्योंकि उसको प्रकाश से अधिक अन्धकार प्रकाशित करता है। वह प्रकाश से डरता है। तुलसी की यह पंक्ति कितनी सशक्त है। एक–एक शब्द अपनी विशिष्ट अर्थवत्ता की ओर इंगित करता है!

निशि तम घन खद्योत बिराजा

निशि शब्द स्मरण दिलाता है, सूर्य नहीं है, पर निशि ही नहीं, तम भी है। अब रात्रि में तम तो होगा ही। इसके उल्लेख की क्या आवश्यकता ? रात्रि में तम हो, पर चन्द्रमा से ज्योतित रात्रि को पूरी तरह तमसाच्छन्न नहीं कह सकते। निशिके साथ तम का उल्लेख चन्द्रमा की अनुपस्थिति सूचित करता है। अमावस्या की रात्रि पर लगता है कवि को इतने से भी सन्तोष नहीं होता। वह उसके साथ घन भी जोड़ देता है। अमावस्या की रात्रि में सारा आकाश तारों से जगमगाता रहता है, पर बादल के कारण तारे भी आँख से ओझल हो गए। सूर्य नहीं, चन्द्रमा नहीं और जब तारे भी नहीं, तब जुगनुओं की बन आई। उन्हीं का साम्राज्य, 'विराजमान' है।

रावण में प्रकाश की मात्रा चाहे जितनी हो, पर वृत्ति जुगनू की है।

राम सूर्य हैं, उनमें सच्चे सद्गुण हैं; क्योंकि वे दूसरे को प्रकाशित कर देते हैं। उनसे यदि किन्हीं को भय हो सकता है, तो उन्हें, जो अन्धकार में ही अपनी सत्ता सुरक्षित समझते हैं। राजमहलों से लेकर दरिद्र की झोपड़ी तक को समान रूप से प्रकाश का वितरण करने वाला यह सूर्य ही सच्चे अर्थों में तुलसी के लिए सद्गुणों का प्रतीक है। यह राम हैं, जो सब को प्रकाश और आनन्द का वितरण करते हैं;

राम के सम्पर्क में आकर साधारण जन भी महत्ता के शिखर पर जा पहुँचता है।

केवट निशिचर विहग मृग, किए साधु सनमानि
तुलसी रघुवर की कृपा, सगुन सुमंगल खानि

यह उनकी गुणवत्ता है। राम का व्यक्तित्व सूर्य–सा दीप्तिमान, पर साथ ही चन्द्र ... सुशीतल, आह्लादक है। उन्होंने नाम मात्र के लिए सूर्यवंश में जन्म नहीं लिया था। सचमुच ही उनके चरित्र में इस शब्द को पूर्ण सार्थकता प्रदान की गई, पर सूर्य का प्रखर प्रकाश हमें स्वयं से दूर ही रखता है। उसके बहुत पास जाने की तो कल्पना ही क्या, उसे सीधी दृष्टि से देखना भी कठिन है। इसीलिए 'राम' के साथ जुड़ा हुआ 'चन्द्र' उन के व्यक्तित्व की समग्रता की ओर इंगित करता है–'राम चन्द्र'। धर्म और आदर्श का सच्चा रूप देखना हो, तो दूर्वादल श्याम राम का चित्र हमारे हृदय में उभरे बिना नहीं रह सकता है। संघर्ष के क्षणों में आजानुबाहु धनुर्धर राम हमारे समक्ष वीरवेष में हमारा नेतृत्व कर रहे होते हैं। समुद्र जिनकी क्रोध भरी बङ्किम दृष्टि से उबल पड़ता है–उसे भी मार्ग देना ही होगा। स्नेह और प्रीति के काव्य में प्रिया–प्रेम में पगे प्रेम के देवता राम का चित्र कौन ... सकता है ? प्रजा–पालक के कठिन कर्त्तव्य का पालन करते हुए बज्रादपि कठोर राम का व्यक्तित्व तो निराला है ही। सारी संस्कृति, शील, गरिमा राम के व्यक्तित्व में साकार हो उठी है।

इसीलिए जब भी किसी मनीषी कवि की दृष्टि नायक की खोज में चली, तो राम व्यक्तित्व की विराट् अनुभूति में खो गई। आ

कवि ने करुणा के क्षणों में कविता के जिस छन्द विधान को स्वयं की वाणी में मुखरित पाया उसकी सार्थकता और उसके उपयोग के लिए उन की व्यग्रता ने जिसे खोजा, वह 'राम' थे. संसार का सर्वप्रथम महाकाव्य राम के चरित्र से बना, यह कोई संयोग न होकर काव्य की 'नियति' थी, जिसका कोई विकल्प हो ही नहीं सकता था। बाद में भी यह परम्परा अक्षुण्ण रही। शायद ही कोई ऐसा महाकवि संस्कृत-साहित्य में हुआ हो जिसने अपनी काव्य प्रतिभा का अर्घ्य राम के चरणों में अर्पित न किया हो। भवभूति, कालिदास जैसे कृती राम के गुणों का गायन करके धन्य बने। काव्य, नाटक-चम्पू में सर्वत्र राम के जयघोष का स्वर गूँजा। पर राम केवल काव्य के नायक न होकर जन जीवन के नायक हैं। लोक-गीतों में राम की गाथा हमारी आँखों में आँसू लाए बिना नहीं रहती। मांगलिक गीतों के सारे कृत्यों में माताएँ कौशल्या और पुत्र राम हैं। बारात कहीं गयी, उन गीतों में जनकपुरी का ही स्पमरण किया जाता है। भारत की सीमाओं को लाँघकर राम का चरित्र, उनकी स्मृति कहाँ-कहाँ नहीं पहुँची ? आज भी भिन्न चित्रों में, नाटकों में राम परिव्याप्त हैं। इण्डोनेशिया, श्याम, श्रीलंका ही नहीं, अरब देशों की नामावली में वे छाए हुए हैं।

ऐसे व्यक्तित्व को आधार बनाकर लिखना बहुत सरल और साथ ही अत्यधिक कठिन भी है। सरल इसलिए कि राम पर लिखा गया कुछ भी जन-मन को छू लेगा। अन्ततोगत्वा वह उनके आराध्य की गाथा है। जन-भाषा में वह तो घी का लड्डू है, जो टेढ़ा भी अच्छा। पर साथ ही कलात्मकत्ता की दृष्टि यह स्थिति से लेखक और कवि के लिए बड़ी कठिन है। जिस आकृति का महाकवियों ने अपनी लेखिनी की तूलिका से न जाने कितने रंग-बिरंगे रंगों में चित्रण किया हो उस पर ऐसा कुछ कहना, जो पुरातन के साथ ही नूतन रस का आभास दे, असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। पुरातन में नव रस की सृष्टि असाध्य साधन जैसी ही है। पुरातनता छोड़ देना हो, तो यह कठनाई नहीं रह जाती, पर यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे कोई अपने पूर्वज का चित्र सौंप दे और वह चित्रकार चित्र की उपेक्षा करके एक नये सर्वाङ्ग सुन्दर व्यक्ति का चित्र बना कर उसे दे दे। चित्र कितना भी सुन्दर हो पर जिस पुरातन को स्मृति में जीवित रखने के लिए नए चित्र का निर्माण किया जा रहा था, कल्पित चित्र उस उद्देश्य को ही नष्ट कर देगा। उसे तो ऐसा चित्र चाहिए, जो पुरातन की स्मृति को अक्षुण्ण रखने के साथ ही कलाकार, तूलिका और उसके रंगों के चुनाव की चमत्कृति सिद्ध कर सके।

आदि कवि से लेकर अधुनातन कवियों की लेखनी की तूलिका से रामचन्द्र के जो चित्र उरेहे गए हैं, उन सब में तुलसी की प्रतिभा ने राम का जो रूप अंकित किया, वह सचमुच ही अद्वितीय है। लगता है, राम जो वह हैं, पर उन से परिचय नया है। राम की महिमा और गरिमा का दर्शन तो सभी चित्रों में था, पर वह अपनापन जो इन राम की आँखों में हम पाते हैं, वह अन्यत्र कहाँ ? अन्य चित्रों में लगता था कि राम की दृष्टि कहीं सूदूर चिन्तन में खोई हुई है। पर तुलसी के राम के समक्ष खड़े होते ही लगता है जैसे वे स्नेह-भरी दृष्टि से हमे ही निहार रहे हैं। वह तो सर्वथा अपने हैं।

कुछ कहते हैं, तुलसी ने राम की ईश्वरता पर अत्यधिक बल देकर उनकी सहजता खो दी, यों ऊपर से यह तर्क संगत लगता है, पर मुझे लगता है, ऐसा कहने वालों ने अपनी मान्यता को तुलसी के राम में आरोपित कर लिया है। उन्होंने तुलसी की तरह राम को निकट से देखा होता, तो समझ पाते कि ईश्वरत्व का यह आग्रह ही राम को हमारे अत्यधिक पास खींच लाता,

मानव राम की अपेक्षा ईश्वर राम हमारे अधिक निकट हैं। यह विरोधाभास सत्य ही तुलसी का चमत्कार है।

तुलसी के लिए राम इतिहास के एक पात्र ही नहीं है जिनका चरित्र उनकी रचना के लिए माध्यममात्र हो। वह सदा राम के साथ अपने को पाते हैं। त्रेतायुग में राम का जन्म होता है। उस समय अयोध्या में उल्लास, आनन्द की जो धूम मची हुई है वह कवि के लिए कल्पना की वस्तु नहीं है। वह स्वयं उसमें सम्मिलित हैं। वहाँ वे पुरुष–रूप में नहीं रह पाते। पुरुष के रूप में राजद्वार तक ही जा सकेंगे। वह तो गाती हुई स्त्रियों की भीड़ में बस तुलसी भर हैं 'दास' नहीं। वह गीतावाली रामायण में राम–जनम के समय गाए गीतों का उल्लेख करते हुए दावा करते हैं–

तहँ तुलसिहुँ मिलि गाए (गीतावली)

हम सोचते हैं, तुलसीदास का जन्म तो कुछ सौ वर्ष पूर्व अकबर के राजत्व–काल में हुआ था। अब इतिहास का यह गणित तुलसीदास समझने में असमर्थ हैं। वे तो राम का राज्य छोड़कर किसी अन्य के राज्य में रह ही नहीं सकते थे। उनके राम–राज्य के नागरिक, राम को छोड़ किसी अन्य राज्य में रहने की अपेक्षा मृत्यु को श्रेयस्कर मानते हैं।

गुर समाज भाइन्ह सहित, राम राजु पुर होउ
अछत राम राजा अवध, मरिय मा सबु कोउ

उन के लिए भारत की राजधानी देहली या आगरा न होकर अयोध्या और चित्रकूट है। उनके राम चित्रकूट की वन–वीथियों में सदा विहार करते हैं। वह उनकी लीलाओं का वहाँ प्रत्यक्ष साक्षात्कार करते हैं। "चित्रकूट के घाट पर भई सन्तन की भीर, तुलसिदास चन्दन घिसैं तिलक देत रघुवीर" को आप जनश्रुति या कपोल–कल्पना कह लीजिए, पर उनकी आत्मस्वीकृति को क्या कीजिएगा ? वह विनय–पत्रिका की पंक्तियों में गुनगुना उठते हैं।

तुलसी तो को कृपालु जो किये कोसल पाल
चित्रकूट को चरित्र चेत चित करि सो

कहा जाता है कि बाल्मीकि तो राम के समकालीन थे, पर राम से उनका परिचय नारद द्वारा उनका चरित्र सुनकर होता है। उन्होंने नारद से जिज्ञासा की–

कोन्वऽस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्

इसके उत्तर में नारद ने राघवेन्द्र का चरित्र उन्हें सुनाया। तुलसीदास का तो काल की दूरियों को लांघकर राम से स्वयं का परिचय है। यह सौभाग्य न तो भवभूति को मिला, न कालिदास को। उनके लिए यह प्रश्न मुख्य नहीं था कि राम ईश्वर हैं या मनुष्य। पर तुलसीदास के लिए तो यह अस्तित्व का प्रश्न है। वे राम में जो देखते हैं, उनमें जो पाते हैं, वह मनुष्य मानकर कैसे संभव होगा ? यह तो ईश्वर ही हैं जो काल की दूरियों में सदा एक रस हैं। वह था, वह है, वह रहेगा। मनुष्य के रूप में देखते ही वह काल की दूरियों में तुलसीदास से ऐसे बिछुड़ेंगे कि बस कहानी रह जाँयगे। अपने आत्मीय, अपने सखा, अपने स्वामी नहीं।

तुलसी के राम का ईश्वरत्व ही था, जो जन–जीवन में उन्हें प्रतिक्षण का संगी बना पाया। वह इसीलिए घर–घर में हैं क्योंकि; वह ईश्वर हैं। जो ईश्वर शब्द की गुरुता से घबरा जाते हैं वे भक्तों के ईश्वर को नहीं पहचानते। एक हताश जाति जो दलित और पराधीन थी, उसके लिए राम का ईश्वरत्व आशा और आश्वास का सन्देश था। राम हैं, वे उसके रक्षक हैं, मित्र हैं, सर्वशक्तिमान हैं। इसलिए उन्हें निराश नहीं होना है। राम का बल जिसके साथ है उसे किसी की

क्या भय ? तुलसी यदि अकबर की सर्वथा उपेक्षा करते हुए निर्भय होकर राम-राज्य का गुण गाते हैं, तो इसीलिए कि उन्हें राम का बल है। यह काल से निर्भयता का वरादान ईश्वर राम ही दे पाते हैं।

तुलसी यह जानि हिए अपने सपने नहिं कालहुँ सो डरि है।
कुदया कछु हानि न औरन पै जो पै जानकी नाथ दया करि है।

आज का तथाकथित बुद्धिवादी कहेगा, इस प्रकार की स्थिति तो मिथ्या कल्पना में जीवित रहने की मनः स्थिति का सूचक है। यह तो वास्तविकता से दूर भागना है। पर यह मानवीय मन और उनकी परिस्थितियों को सही ढंग से न समझ पाने का परिणाम है। यथार्थ ही सदा सत्य नहीं होता। यह बात समझ में आने जैसी न होते हुए भी समझी जानी चाहिए। महाभारतकार ने इसे बहुत पहले समझ लिया था, जब उन्होंने सत्य की व्याख्या करते हुए उसकी परिभाषा की थी।

यद् भूतहितमत्यन्तम्

बहुधा इतिहास में और वर्त्तमान समाज में लोगों ने सत्य के नाम पर जिस वस्तु को इतना गौरवान्वित पद दे दिया वह सचमुच ही वही नहीं, जिसे शास्त्रों में सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा गया है। एक अस्वस्थ व्यक्ति को देखकर हम उससे यदि कह उठें कि अरे, तुम्हारी स्थिति तो बड़ी शोचनीय है और उसे आतंकित कर दें, तो यह यथार्थ हो सकता है, पर सत्य नहीं। हमें तो कहना चाहिए, तुम स्वस्थ होते जा रहे हो। आज तो कल से भी अच्छे लग रहे हो! आप देखेंगे, वह आनन्द से दीप्त हो उठेगा। आपने उसे सचमुच स्वस्थता की दिशा में बढ़ाया। क्या इस क्षण दिखाई देनेवाला ही सत्य है ? जो कल होगा वह भी तो यथार्थ है। व्यापक सत्य के अधिक निकट।

अतः जिन्हें लगता है, राम ईश्वरत्व के कारण हमसे दूर हो जाते हैं, वे जनता के निकट पहुँच कर देखें कि राम का ईश्वरत्व ही उन्हें राम के अधिक निकट ले गया है। ईश्वर का निवास सर्वत्र है, प्रत्येक काल में है। इसीलिए कोई भी मनुष्य मनुष्य का ऐसा चिरसंगी नहीं हो सकता जैसा ईश्वर। राम में ईश्वरत्व का दर्शन बाल्मीकि को भी हुआ था और कालिदास तथा भवभूति को भी। पर तुलसी ने उस ईश्वरत्व को पूरी तरह देखा। उसकी आवश्यकता उन्हें भी थी, समाज को भी। अतः इस रहस्य का उद्घाटन उन्होंने बार-बार किया।

एक सज्जन ने कहा-हम राम को मनुष्य मान कर उनसे कुछ सीख पाते, पर वे तो पूजा के पात्र बन गए। जब वे ईश्वर हैं, तो हम उन जैसे बन ही कैसे सकते हैं ? मैंने उनसे पूछा इतिहास-पुराण में सैकड़ों महापुरुषों का चरित्र मनुष्य मान कर लिखा गया है। आपने उनमें से कितनों की विशेषता जीवन में उतार ली ? एक राम के मनुष्य सिद्ध होते ही चरित्र शुद्धि का मार्ग प्रशस्त हो जाता, यह कैसा भोंड़ा तर्क है ?

फिर ईश्वर मानने की ऐसी बाध्यता ही क्या ? इस प्रकार तर्क करने वाले महानुभाव यदि उन्हें मनुष्य मानकर राम के सद्गुण चरित्र में उतारें, तो इसमें किसे आपत्ति हो सकती है ?

तुलसीदास राम को ईश्वर मानते हैं, पर यदि वे ईश्वर न भी हों तो उनसे [illegible] ईश्वर की आकांक्षा उनमें नहीं है। यह तुलसी दास का प्रेम ही है जो पुकार उठता है।

जौं जगदीश तो अति भलो जौं महीश तउ भाग
तुलसी चाहत जन्म भरि राम चरण अनुराग

तुलसीदास में राम के प्रति न तो तटस्थ दृष्टि है और न तो निष्पक्षता। तटस्थता और निष्पक्षता का दावा भी उन्होंने कभी नहीं किया

है और सच कहूँ, तो ऐसी कोई दृष्टि होती भी नहीं है। हाँ, निष्पक्षता के प्रदर्शन के लिए कलात्मक अभिनय अवश्य किया जा सकता है। इस प्रकार के दावेदार या तो इतने चतुर हैं कि वे सब कुछ जानकर भी वस्तु के प्रति आस्था बनाने के स्थान पर समीक्षक की निष्पक्षता रखना चाहते हैं। अथवा वे वस्तुतः इतने भोले हैं कि कभी आत्मविश्लेषण करने की आवश्यकता ही नहीं समझते और स्वयं को हृदय से तटस्थ और निष्पक्ष मानते हैं। यह कहना शायद अधिक उपयुक्त होगा कि इस श्रेणी में दोनों ही प्रकार के व्यक्ति सम्मिलित हैं।

एक प्रसिद्ध समालोचक को मैं जानता हूँ जो तुलसीदास के विषय में प्रचलित सभी चमत्कारों को स्वयं के ग्रन्थ में कपोल-कल्पित और अवैज्ञानिक कहकर उनकी हँसी उड़ाता है। पर व्यक्तिगत जीवन में चमत्कार और चमत्कारी साधुओं में बड़ी आस्था रखता है। अब उसको इस प्रकार का दंभ केवल इसलिए अपनाना पड़ता है कि वह प्रचलित समालोचक के मानदण्ड में स्वयं को खरा और पूरा उतार सके। उसे तुलसीदास और वास्तविकता से अधिक चिन्ता अपनी है।

तुलसीदास में यह साहस था कि वे स्वयं की दृष्टि में व्याप्त राग को स्वीकार करें। वे तो भक्ति की व्याख्या करते हुए खुली घोषणा करते हैं कि भक्त में स्वपक्ष का हठ होना चाहिए, (दुष्टता नहीं)।

भगति पक्ष हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई

पर पक्षपात का यह समर्थन भी सुविचारित रीति से है। वे यह जानते हैं कि पक्षपात एक सीमा के आगे दुष्टता बन जाता है। अपने प्रिय में जो आकर्षण है वह समभाव में सर्वत्र कैसे पाया जा सकता है ? माँ की दृष्टि में अपने बालक जैसा ममत्व अन्यों के प्रति समव नहीं ह पर यदि माँ दूसरों के बालकों की निन्दा करते हुए उनकी हानि चाहे तो यह पक्षपात दुष्टता के रूप में बदल गया। ऐसा पक्षपात संघर्ष और पीड़ा का सृजन करेगा। तुलसीदास जिस पक्षपात का समर्थन करते हैं, वह स्वाभाविकता के ही रस को अति रसमय बना कर सत्य को शि और आनन्दमय बना देता है।

न तो भक्त स्वयं को पक्ष-विहीन मानत है और न अपने भगवान् को ही सम या निष्प रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। कृष्ण के मस्त का मोर-पक्ष तो प्रसिद्ध ही था, तुलसी के रा भी मोर-पक्ष-धर हैं।

मोर पंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीज बिच कुसुम कली

यह मोर-पक्ष श्रृंगार मात्र न होकर तुल की दृष्टि में पक्ष-धरता का भी प्रतीक है। उन राम खुले शब्दों में घोषित करते हैं मैं स होकर भी पक्षपाती हूँ।

समदरशी मोहि कह सब कोऊ
सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ

तुलसी के राम को देखने के लिए, समझ के लिए वही दृष्टि या उससे तादात्म्य रखने दृष्टि चाहिए। वन मार्ग में जाते हुए पथिक स की छवि देखते हुए एक ग्राम बधूटी ने अ सखियों से कहा "देखो न यह बाँकी छवि" देखने से पहले मुझ-सी बन जाओ। मेरी ओ ले लो।

बनिता बनी श्यामल गौर के बीच बिलोकहु री सखि मोहि सो

ग्राम-बधूटी के मुख से यह तुलसी ही भावना है जो राम के देखने वालों से आ करती है-'बिलोकहु री सखि मोहि सी है।"

जो ऐसा नहीं कर सकते वे तुलसी राम को जान भी नहीं पावेंगे।

स्वामी जी की अमर कहानी

(स्वामी शशांकानन्द)
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची

सुनो सुनो हे मानव जाति विवेकानन्द की अमर कहानी।
रामकृष्ण और सारदा माँ के वीर दूत की अमृतवाणी।।

श्रीरामकृष्णने दिव्य दृष्टि से अदभुत दर्शन पाए।
गगन मंडल में सप्तऋषि बैठे थे ध्यान लगाए ।
दिव्यकान्ति से ऋषिगणों के मुखमण्डल थे चमके।।

मधुर मधुर मुस्कान भरे तब दिव्य शिशु एक आया।
मुख्य ऋषि के गले में उसने बाँह डाल भरमाया।
मैं जाता हूँ तो तुमको भी पृथ्वी पर आना है ।।

शिशु बने श्रीरामकृष्ण कामारपुकुर को धन्य किया।
नरेन्द्रनाथ बन ऋषिवर ने भी कलकत्ता में जन्म लिया।
धर्म प्रतिष्ठा करके जग में मानव का कल्याण किया।।

भुवनेश्वरी देवी के मन में दुःख हुआ था भारी।
कन्या तो घर में हैं किन्तु पुत्र बिना घर खाली।
मन्नत करती शिवालयों में पुत्र मिले हमको भी।।

शिवपूजा करते करते सोई तो उनको स्वप्न हुआ।
शिवशंकर ने बालक बनकर भुवनेश्वरी से यही कहा।
पुत्र रूप में माता तेरे घर में मैं आऊँगा।।
सुनो सुनो.....
बारह जनवरी अठारह सौ तिरसठ कलकत्ता में जन्म हुआ।
विश्वनाथ और भुवनेश्वर के आंगन में आलोक हुआ।
धर्मस्थापन हेतु वीर वीरेश्वर का अवतार हुआ।
सुनो सुनो.....
नामकरण वीरेश्वर फिर भी 'बिले' नाम था प्यारा।
नरेन्द्रनाथ था नाम आपका किन्तु नरेन पियारा।
नाम विवेकानन्द धरे संन्यास धर्म अपनाया।
सुनो सुनो.....
बाल्यकाल से मेधावी एकाग्र बुद्धि निष्ठा वाले।
श्रवणमात्र से सभी पाठ थे याद उन्हें हो जाते।
सभी विषय पर पल भर में वे पारंगत हो जाते।।
सुनो सुनो.....
बालकपन से वीर साहसी धीर और निर्भय थे।
खेल–कूद, व्यायाम और कुश्ती में बड़े निपुण थे।
दुर्बलता का [illegible] और देह सबल थे।।
सुनो सुनो.....
ध्यान ध्यान का खेल अनोखा उनको खूब था भाता।
एक दिवस उनका मन गहरे ध्यान में डूब गया था।
सर सर करते विषधर को भी पास न देख सका था।।
सुनो सुनो.....
भय से भागे सब साथी और माँ को शीघ्र ले आए।
माँ ने भौंचक्का हो देखा साँप को फन फैलाए।
धीरे–धीरे सर्प गया पर माँ का मन घबराए।।
सुनो सुनो.....
बचपन से रामायण गीता सुनकर के मन मुग्ध हुआ।
सभी धर्म के ग्रन्थ और दर्शन पढ़कर यह प्रश्न उठा।
कौन धर्म है सत्य और ईश्वर को किसने देखा।।
सुनो सुनो.....
तत्कालीन धर्म–गुरुओं से नरेन ने जाकर पूछा।
है कोई जिसने ईश्वर को निज आँखों से देखा।
यही प्रश्न दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण से पूछा।।
सुनो सुनो.....
श्रीरामकृष्ण बोले, "हाँ मैंने ईश्वर को देखा है।
तुझको जैसे देख रहा हूँ उससे अधिक निकट है।
तू चाहे तो तुझ को भी परमेश्वर मिल सकता है।।
सुनो सुनो.....
कठिन परिक्षाएँ लेकर वे शरण गुरू की आए।
नरेन्द्र कौन और कहाँ से आए अनुभव सब करवाए।
श्रीरामकृष्ण के कार्य हेतु सप्तऋषि एक आए।।
सुनो सुनो.....
दीक्षा दे श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को शिष्य बनाया।
निर्विकल्प समाधि का उनको नव अनुभव करवाया।
शिवज्ञान से जीव सेवा का अनुपम पाठ [illegible]
सुनो सुनो.....
नरेन्द्रनाथ के जीवन को अब दुर्दिन ने आ घेरा।
पिता की मृत्यु हुई कि रिश्तेदारों ने मुख फेरा।
दर–दर खोजा मिला न धंधा चारो ओर अँधेरा।।
सुनो सुनो.....
श्रीरामकृष्ण ने माँ काली के चरणों में भेजा था।
माँग सका न धन और दौलत भात दाल और कपड़ा।
ज्ञान वैराग्य विवेक और भक्ति का जीवन माँगा।।
सुनो सुनो.....
श्रीरामकृष्ण की महासमाधि शिष्यों को दुःख भारी।

बराहनगर में सभी त्यागी शिष्यों ने सूझ विचारी।
रात दिवस जप ध्यान समाधि करी तपस्या भारी।।
सुनो सुनो.....
आँटपुर हुगर्ली में बाबूराम के घर सब आए।
क्रिसमस की संध्या में बैठे अग्निकुंड बनाए।
त्याग प्रेम की चर्चा में फिर अग्निशिखा जलाए।।
सुनो सुनो.....
सब त्यागी शिष्यों ने उस दिन विरजा होम किया था।
सभी वासनाओं को तज संन्यासी वेश लिया था।
नरेन्द्रनाथ संन्यासी बनकर विवेकानन्द हुआ था।।
सुनो सुनो.....
उठी कामना विवेकानन्द के मन में तीर्थ भ्रमण की।
प्रकृत धर्म की जगह बाह्य आचरणों ने ली थी।
धर्म प्रचार की जिम्मेदारी तब स्वामीजी ने ली थी।।
सुनो सुनो.....
पहले काशी फिर प्रयाग, अयोध्या और वृन्दावन।
उत्तराखण्ड, राजस्थान, गुजरात और दक्षिण।
पहुँचे तब कन्याकुमारी स्वामीजी परिव्राजक बन।।
सुनो सुनो.....
भ्रमणकाल में परिव्राजक के मनको ठेस लगी थी।
ऋषियों की सन्तान आज धनहीन मूर्ख और रोगी।
कैसे हो उत्थान बस यही मन में चिन्ता भारी।।
सुनो सुनो.....
कन्याकुमारी मंदिर की चट्टान की महिमा भारी।
अनाहार निद्रा को त्याग तब लगी समाधि गहरी।
तीन दिवस और रात थी केवल अश्रुधारा बहती।।
सुनो सुनो.....
स्वामीजी ने सेवाव्रत की गढ़ी योजना भारी।
त्यागी संन्यासी युवकों को दे दी जिम्मेदारी।
मूर्ख रोगी और दरिद्रों में शिवपूजा की न्यारी।।
सुनो सुनो.....
सबधर्मों की महासभा शिकागो में होनी थी।
पृथ्वी के धर्मों के प्रतिनिधियों की भीड़ लगी थी।
भावीवश स्वामीजी ने वहाँ जाने की ठानी थी।।
सुनो सुनो.....
परिचय पत्र नहीं था न था धन और ठाँई।
धूप और जाड़े में पैकिंग बक्सों में रात बितायी।
गुरु कृपा से मेरी हेल ने सभी व्यवस्था की थी।।
सुनो सुनो.....
धर्म समन्वय विश्व एकता निर्भयता की वाणी।
फैल गयी चारो दिशाओं में मुग्ध हुए जग प्राणी।
स्वामीजी ने घोषित की अद्वैत वेदान्त की वाणी।।
चार वर्ष स्वामीजी ने वेदान्त धर्म सिखलाया।
अमरीका, इंग्लैण्ड के श्रद्धालुओं को शिष्य बनया।
विश्व विजयी होकर स्वामीजी फिर भारत लौटे थे।।
सुनो सुनो.....
देश की जनता उमड़ पड़ी स्वागत ही स्वागत था।
राजाओं ने गाड़ी खींची अनुपम शोभा न्यारी।
पुष्प और माला अर्पण कर जयजयकार करी थी।।
सुनो सुनो.....
अठारह सौ सतानवे में एक मई का दिन था
स्वामीजी ने संन्यासी और भक्तों को बुला लिया था
रामकृष्ण मठ और मिशन की स्थापना करायी।
सुनो सुनो.....
गंगा तट पर स्वामीजी ने बेलुड़ मठ बनवाया
ब्रह्मचारी, संन्यासीगण को मठ में जमा किया था
रामकृष्ण मिशन के सेवा कार्यों को चलवाया।
सुनो सुनो.....
स्वामीजी ने प्रकृत–धर्म का मार्ग हमें दिखलाया
शिवज्ञान से जीव की सेवा, ऐसा धर्म बताया
सब जीवों में अलख निरंजन एक ही ब्रह्म समाया।
सुनो सुनो.....
४ जुलाई १९०२ को लीन हुए स्वामीजी
पड़ी रह गयी देह मगर हो गए अमर स्वामीजी
विश्व के कण–कण में गूँजी है वाणी स्वामीजी की।

(दादरा)

महादेव योगीश्वर, सन्तन सुखकारी
कैलास छोड़ आये, आज शंभु त्रिपुरारी।

नहीं डमरू जटाजूट, नहीं हाथ अब त्रिशूल
विवेकानन्द रूप धरे, भक्तन हितकारी।

(झांपताल)

कौन तुम बालक योगी, महायोग निगमन
गंभीर ध्यान में मगन, हे कमलदल लोचन।

दिव्य देह तरुण कान्ति, मन में अपूर्व शान्ति
छेदन करें मानस भ्रान्ति, हे भव भय मोचन।

ब्रह्म मगन विवेकानन्द, नहीं भाये काम कांचन
देख रूप तब अनूप, भक्तों के मन मोदन।

(शेष अगले अंक में)

चलिये : मायावती घूम आयें

डॉ० निवेदिता बक्शी, मुम्बई

मुम्बई शहर की घुटन से मन ऊब गया था। क्या आदमी सिर्फ पैसे कमाने की मशीन है? क्या रखा है इस जिन्दगी में ? रोज बस काम करो, खाओ और सो जाओ। आँखें भी कचरे भरे रास्तों को देखकर थक गयी थीं। इस छुट्टी में कहीं प्रकृति के मनमोहक वातावरण में जाने का मन हो रहा था। सो हमने तय किया कि कहीं दूर प्रकृति की घाटियों में जाकर अपनी थकान मिटायें।

श्यामला दा खार में रहते हैं। वह मेरे भाई साहब हैं। एकदम मस्त हैं और खूब उमंग है उनमें। वे तो सुनते ही नाच उठे और उन्होंने विचार परामर्श करना शुरू कर दिया। सबसे पहले वे रामकृष्ण मिशन, खार में जाकर बड़े महाराज से मिले। 'उन्होंने हमें मायावती अलमोड़ा और श्यामलाताल के बारे में बताया।' हमने उनकी परवानगी लिखित रूप में ली और 24 अक्टूबर का दिन ठीक किया। हमने तीनों जगह वहाँ के महाराज को पत्र लिखा।'

(1) रामकृष्ण कुटीर, ब्राईट एण्ड कॉर्नर, अलमोड़ा
उत्तर प्रदेश – 263601

(2) अद्वैत आश्रम, मायावती, लोहाघाट होते हुए
जिला–पिथौड़ागढ़, उत्तर प्रदेश – 262524

(3) विवेकानन्द आश्रम, श्यामलाताल सुखीडांग पीलीभीत होते हुए
जिला–चम्पावत, उत्तर प्रदेश – 262523

वहाँ से फौरन जवाब आ गया और वहाँ के संन्यासियों ने हमें सस्नेह आमंत्रित किया। हम आठ लोग थे–मैं और मेरे पति, भाई साहब और भाभी, हमारी अंजुदी, हमारे दो भतीजे और बड़े भतीजे की पत्नी रूपा। हमने पश्चिम एक्सप्रेस में 1 महीना पहले दिल्ली के लिए बुकिंग करायी। हमने तैयारी शुरू कर दी और खाने–पीने की चीजें रख लीं। मन में उमंग थी। तैयारी पूरी हो गयी थी, इतने में खबर मिली कि हमारे दो भतीजे नहीं जा सकेंगे। बड़ा भतीजा मरचेन्ट नेवी में है। उसकी पत्नी रूपा का मुँह थोड़ा उतर गया। हम सबने उसे दिलासा दिलाया और फिर वह दुगुने उत्साह से तैयारी करने लगी।

अंत में 25 अक्टूबर का दिन आ ही गया। सबेरे 11 बजे की गाड़ी में चढ़े और अपना सामान संभालकर रख दिया। गाड़ी बराबर 11.15 को निकल पड़ी। मेरा मन बच्चे के लिये जरा दुखी हो रहा था कि वह नहीं आ पाया। क्योंकि उसके मेडिकल कॉलेज का इम्तहान बिल्कुल करीब था पर गाड़ी स्टेशन से छूटने के फौरन बाद घर–बार, काम–काज सब भूल गई। मैं और प्रकृति बस, बीच में कोई नहीं। गाड़ी बोरी–विली पर भी रूकती है पर सिर्फ पाँच मिनट के लिये। गाड़ी फिर चल पड़ी। पेड़–पौधे, खेत–खलिहान, पशुपंक्षी देखकर मन आनन्दमय हो रहा था। मन का आनन्द ही [illegible] के जीवन का लक्ष्य है। यही आनंद जब चरमसीमा में पहुँचता है, ईश्वर की ओर, तो उसे ही परमानंद कहते हैं।

हमारा डब्बा वातानुकूलित था इसलिये बड़ा साफ सुथरा था। लोग भी साफ–सुथरे थे। धीरे–धीरे रात हो गयी। हमने रात का भोजन किया। आजकल भारतीय रेलवे काफी खयाल रखती है। रात को एकदम साफ दूध के समान सफेद चादर, तकिया और कम्बल दिया। ट्रेन धीरे–धीरे गंतव्य स्थल की ओर बढ़ती जा रही थी। सामने एक युवती बैठी थी। केसरिया रंग के कुरते में काफी आकर्षक लग रही थी। उसे सबेरे चार बजे भरतपुर उतरना था। वह करीब रात के 2 बजे ही टिकट चेकर के साथ आगे वाले डब्बे में चली गयी। बाकी सब सहयात्री बेचैन हो उठे। न तो वे खुद सोये न किसी को सोने दिया। सब चिंतित थे कि शायद गलत स्टेशन पर उतर गयी थी। यह है, हमारी भारतीय

संस्कृति। केवल 5–10 मिनट की पहचान में भी आदमी कितने करीब हो जाते है! अंत में भरतपुर स्टेशन आ गया तो देखा गया–वही युवती उचित स्टेशन पर ही उतरी थी। बाकी सबकी भी नींद खराब हो गयी।

भरतपुर में एक और महिला चढ़ी। शायद 100 किलो के ऊपर वजन होगा। उसके साथ उसका 5 साल का बच्चा था उतना ही अधिक शैतान। महिला खाने के लिये कितनी चीजें लायी थी। या तो महिला सो रही थी या तो उसका मुँह चल रहा था। लड़का खाने की चीजों को कुछ तो खा रहा था, कुछ फेंक रहा था। कभी तो अपनी मम्मी को चेन से बाँध रहा था तो कभी मार रहा था। महिला को तो हिलने में भी मुश्किल हो रहा था।

दिल्ली शहर आ गया। हमारी गाड़ी निजामुद्दीन स्टेशन पर खड़ी हो गयी। हमें वहाँ से गुड़गाँव जाना था। सबेरे के दस बज रहे थे। हमने टेक्सी ली और एक घंटे में गुड़गाँव पहुँचे। वहाँ हमारा एक और भतीजा रहता है। सबने दौड़कर हमारा स्वागत किया।

भतीजे की पत्नी का नाम जयिता है। बड़ी प्रिय और प्राणवन्त है। उसने खाना पहले से ही तैयार रखा था। श्यामल दा, भामी, दीदी,और रूपा पहले से ही वहाँ मौजूद थे।

हमारी गाड़ी रात को 11.30 बजे थी। हमे नई दिल्ली जाकर काठगोदाम के लिये ट्रेन पकड़नी थी। हम घर से 9 बजे निकले। गुड़गाँव से स्टेशन काफी दूर पर था। हमने दो कार ली, जयिता उसकी प्यारी बच्ची और हमारा भतीजा हमें छोड़ने के लिये इतनी दूर आये। हमारे लिये, खाना तैयार कर साथ में लाये थे। हम 10 बजे स्टेशन पहुँचे। हम 6 लोग थे और सामान हमसे दुगुना। जयिता हमें छोड़कर चली गयी। जैसे ही हम स्टेशन के अन्दर पहुँचे तो पता लगा कि खाने का थैला गाड़ी में ही छूट गया था। अब क्या करें ? जयिता तो चली गयी थी। हमें फिर से अपने खाने का इन्तजाम करना था। इतने में काठगोदाम एक्सप्रेस स्टेशन पर आ गई। हम अपने सामान सहित गाड़ी पर चढ़ गये। समान भी सलीके से रख दिया और ताला लगा दिया। अब खाने का इन्तजाम करना था। अरे इतने में जयिता हाँफती हुई स्टेशन पर आयी। हाथ में वही खाने का थैला था। वे आधी दूर तक चले गये थे पर उनकी प्यारी बिटिया ने खाने का थैला दिया और जयिता को बताया। फिर वे गाड़ी घुमाकर हमें खाना देने के लिये आये। हम उनकी मानवीयता को देखकर दंग रह गये। भगवान इन्सानों के अन्दर ही बसते हैं। गाड़ी चल पड़ी। हमने भोजन किया और फिर सो गये। सबेरे 6 बजे काठगोदाम स्टेशन आ गया। यह स्टेशन छोटा था पर साफ–सुथरा था। स्टेशन के बिल्कुल नजदीक ही पहाड़ था और हरे–भरे पेड़ कितने सुन्दर दिखाई दे रहे थे। हमने स्टेशन पर चाय पी। जीप किराये पर ली अलमोड़ा के लिये। हम आठ बजे ईश्वर का नाम लेकर रवाना हुए। पहाड़ी रास्ता था। गाड़ी गोल–गोल घूम कर पहाड़ों पर चढ़ रही थी। एक तरफ गहरी खाई थी और दूसरी तरफ पहाड़। रास्ते में घना जंगल बीच–बीच में झरने में तरह–तरह के फूल खिले थे। दस बजे हम भीमताल पर रूके। वहाँ चाय नाश्ता किया। आगे रास्ता भवानी, नैनीताल और लोहाघाट को जाता है, रास्ते में कुछ युवतियाँ पानी का घड़ा लेकर जा रही थीं। कुछ बच्चे स्कूल जा रहे थे। अब हम रामगढ़ पहुँच गये। वह समुद्री तट से 1000 मीटर की ऊँचाई पर है। साथ–साथ एक नदी बहती जा रही थी। नाम पूछने पर पता लगा गौवा नदी है। थोड़ी देर में नैनागाँव आ गया।

अक्टूबर का महीना अलमोड़ा में बड़ा ही सुहावना है। ठंड थी पर बर्दाश्त के बाहर नहीं। अल्मोड़ा जाते समय एक चट्टान देखी। वह बिल्कुल मेंढ़क के आकार की थी। रास्ते में गाड़ी रोककर हमने नंदादेवी की चोटी देखी। क्या सुंदर दृश्य था! चारों तरफ घना जंगल। दूर हिमालय पहाड़ और उसके ऊपर जो धूप

पड़ रही थी उससे बरफ का पहाड़ चाँदी की तरह चमक रहा था और हम मंत्रमुग्ध होकर देख रहे थे। चारों तरफ देवदारु के वृक्ष खड़े जैसे उस असीम ईश्वर की वन्दना कर रहे थे। कैसा सुंदर दृश्य था हम सब भजन गाते–गाते आगे बढ़ने लगे। रास्ता पहाड़ों को काट–काट कर बनाया गया है। इसलिये घुमावदार सड़कें हैं। ड्राइवर को तो धन्यवाद देना ही पड़ेगा। क्या कुशलता से गाड़ी चला रहा था। हमें तो पहले–पहले बहुत डर लग रहा था फिर आदत सी हो गयी थी। हम करीब 12 बजे अल्मोड़ा पहुँचे। सीधे हम राममकृष्ण कुटीर में गये।

रामकृष्ण कुटीर आश्रम स्वामी तुरीयानन्द जी के द्वारा बनाया गया था। वे यहाँ आकर तपस्या किया करते थे। जीप से उतरकर सीधे आश्रम पहुँचे यह आश्रम 300 सीढ़ीयों के नीचे बना है। 300 सीढ़ी उतरने के बाद आफिस घर है। उसके पास एक और बड़ा कमरा है जिसके कोने में श्रीरामचन्द्र की मूर्त्ति है। सारे कमरे लकड़ी के बने हैं। कमरे में श्रीरामकृष्ण देव और उनके शिष्यों की तस्वीरें लगी हुई हैं। दूसरे कोने में कुर्सी और मेज है। वहाँ बैठ सब ब्रह्मचारी काम कर रहे हैं। हम जाकर महाराज से मिले। उन्होंने हँसकर स्वागत किया। हमें एक फार्म भरने को दिया। हम कितने लोग हैं रोटी खाते हैं कि चावल। हमने फार्म भरकर उनको दिया। उन्होंने हमें कमरा नं०–दो दिया जो 300 सीढ़ी चढ़ने के बाद था। हमें दिन में तो 5–6 बार 300 सीढ़ियाँ चढ़नी–उतरनी पड़ेंगी ही। आफिस के पास ही खाने का कमरा है बाहर दस लोग बैठ सकते है। सामने सुन्दर फूलों के वृक्ष है और सामने कुमायु पर्वत दिखता है। अंदर संन्यासियों के खाने की जगह है पास में ही मंदिर है। मंदिर का वातावरण शांत है। अंदर श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द के तस्वीरे हैं। उन्हें सुन्दर फूलों से सजाया गया है। सबसे ऊपर माँ काली की तस्वीर है। पास में ही एक लकड़ी की खाट है। उसके ऊपर स्वामी तुरीयानन्द जी की बहुत सुन्दर और जीवन्त तस्वीर है। स्वामी तुरीयानन्द श्रीरामकृष्ण के शिष्य थे। वे ब्रह्मज्ञानी थे। उन्होंने बड़ा ही कठोर जीवन धारण किया। गीता में जिसे "स्थितप्रज्ञ" कहा गया है, वे इसी के प्रतिमूर्त्ति थे। वे प्रायः निर्जन स्थानों में जाकर तपस्या किया करते थे। यह उनकी तपस्याभूमि है। इस भूमि पर पैर पड़ते ही मन शान्त हो जाता है और स्वतःस्फूर्त भक्ति आ जाती है। इस मंदिर में संध्या सबेरे श्रीरामकृष्ण देव की पूजा और आरती होती है।

हम अपने कमरे की चाबी लेकर 300 सीढ़ी पार करके ऊपर पहुँचे। रास्ते में चारो तरफ सुन्दर फूलों के पौधे–थे। दो कमरों वाला स्थान हमें दिया गया था। अंदर ही गुसलखाना था। गरम पानी की सुव्यवस्था थी। पलंग पर कम्बल चादर आदि की सुव्यवस्था थी। सभी चीजें सलीके से लगायें गयी थीं। हम चारों महिलाएँ एक कमरे में रहीं। पास के कमरे में सिर्फ [illegible] बिस्तर थे। श्यामल दा और मेरे पति ने लिया। सभी ने अपना सामान ठीक तरीके से रखा और जैसे ही हमने छोटे कमरे की खिड़की को खोला तो बस स्वर्ग जैसे सामने ही था। हिमालय पहाड़ का ही हिस्सा कुमायूँ पहाड़ बर्फ से ढ़का था। दूर–दूर तक खामोशी थी। चेरी के वृक्ष फूलों से लदे हुए थे। चिनार और देवदार के वृक्ष कतारों से खड़े थे। थोड़ी देर के लिये हम खुद को ही भूल गये। सब मिलाकर इस प्रकार 10 कमरें हैं। इस आश्रम की नींव स्वामी तुरीयानन्द जी और स्वामी शिवानन्द जी ने सन् 1916 में डाली थी।

हाँ रामकृष्णमिशन में अनुशासन बहुत ही उत्तम है। 12 बजे भोजन का समय है। 3 घंटियाँ बजती हैं। सबेरे का नाश्ता 6 बजे दिया जाता हैं। शाम की चाय 8 बजे और रात का खाना बराबर 8 बजे दिया जाता है। जो देर से आते हैं उन्हें खाना नहीं मिलता। प्रार्थना के बाद भोजन परोसा जाता है। भोजन करते समय सामने पहाड़ देख सकते हैं। सामने रंगबिरंगे फूलों के अतिसुंदर पौधे हैं। आश्रम बस फूलों से लिपटा है। हमें दाल चावल

सब्जी परोसी गयी। उसके बाद हम साधु संग करने गये। कहते है संसारियों के लिये ईश्वरप्राप्ति के केवल तीन उपाय हैं भगवान के लिये व्याकुलता, साधुसंग और निर्जन वास। हम स्वामी सत्यानन्दजी से मिले। वे हमसे मिलकर इतने खुश हुए कि हम उसका वर्णन नहीं कर सकते। उन्होंने हमसे बहुत अच्छी–अच्छी बातें कीं फिर उन्होंने हमारे लिये यहाँ की आसपास के जगहों को देखने के लिए एक सुन्दर सा टाईम–टेबल बनाकर दिया अपने हाथों से और कहाँ क्या पूजा देनी है वह भी। उन्होंने आज ही हमें काकड़ीघाट जाने के लिये कहा। आश्रम की तरफ से ही जीप का इन्तजाम हो जाता है।

हम पहले कसारा देवी मंदिर में गये। मंदिर थोड़ी ऊँचाई पर है। पास में चट्टान है जहाँ पर स्वामी विवेकानन्द ने बैठकर तपस्या की थी। अंदर देवी का मंदिर है। मंदिर के चारों तरफ पहाड़ और चिनार के वृक्ष हैं। यह यहाँ की कुल देवी है। हमने सर झुकाकर देवी की आराधना की। थोड़ी दूर पर शिव का मंदिर भी है। वहाँ से थोड़ा नीचे ढलान पर जाने पर रामकृष्ण मिशन की संन्यासिनियों का आश्रम 'सारदानठ' है। वहाँ जैसे फूलों का मेला है। उन संन्यासिनियों के हाथों में जादू है। इतना सुन्दर और प्रशान्त वातावरण था। हम अंदर मंदिर में जाकर थोड़ी देर बैठे। प्रसाद ग्रहण किया और फिर वहाँ से हम पाताल देवी के मंदिर में गये।

पाताल देवी का मंदिर थोड़ी दूर पहाड़ से नीचे उतर कर था। एक गड्ढे में कई देवी देवताओं की मूर्तियाँ थीं। अंधेरा था। हम टार्च लेकर गये थे। उसके सहारे सब मूर्तियों को देखा। बाहर निकलकर दो छोटी सी कुटिया दिखी। पूछने पर पता लगा कि 1890 में स्वामी ब्रह्मानन्द जी और स्वामी सारदानन्द जी ने आकर तपस्या की थी। उस समय स्वामीजी परिव्राजक के रूप में भारत भ्रमण कर रहे थे। पाताल देवी करीब 500 फीट की ऊँचाई पर है।

वहाँ से हम काकड़ीघाट की तरफ चल पड़े। उसी स्थान पर 1890 में स्वामी विवेकानन्द हाल बनाया गया था। काकड़ी घाट के पास मुस्लिमों का कब्रिस्तान है। वहाँ पर एक बड़ा काले रंग का पत्थर है। स्वामी विवेकानन्द जब घूमते–घूमते अलमोड़ा आये भूख और प्यास के मारे उनका बुरा हाल हो गया था। साथ में गंगाधर महाराज थे। उन्होंने उनको वहाँ पत्थर के ऊपर बैठाकर पानी की खोज में गये। पास में ही एक फकीर अपनी कुटिया में रहता था। स्वामीजी की हालत देखकर उसे दया आ गयी और उसने स्वामीजी को एक टुकड़ा ककड़ी का खिलाया। उसे खाकर स्वामीजी में बल आया और वे होश में आये। अमेरिका से लौटने के बाद स्वामीजी जब अलमोड़ा में भाषण दे रहे थे तो उन्होंने भीड़ में उस फकीर को देखा। उन्होंने उसे बुलाकर गले से लगाया और सबके सामने उसका सम्मान किया। कुछ रूपये भी दिये। इसलिये इसका नाम काकड़ीघाट है।

स्वामीजी की जीवनी का ध्यान करने से ही मन भर जाता है। सिर्फ महामानव ही इस प्रकार का कठिन जीवन बिता सकते हैं। हमने वहाँ शांति से बैठकर स्वामीजी का ध्यान किया।

अब हम आश्रम लौट चले। संध्या की आरती देखी। 8 बजे खाना खाकर हम अपने कमरे में गये। रात में पहाड़ पर निस्तब्धता छा जाती है। काकड़ीघाट में स्वामीजी को अनुभव हुआ था कि व्यक्ति और समष्टि एक ही नियम से परिचालित हैं। व्यष्टि के आदि में भी शब्दब्रह्म था।

हम नित्य अपने कमरे में जाकर पाठ करते थे। किसी एक धार्मिक पुस्तक से श्यामलदा पढ़ते थे भाव विभोर होकर! फिर थोड़ी चर्चा होती थी और अंत में दो चार भजन। मन कितना प्रफुल्ल रहता था। मनुष्य के जीवन में अगर यह छोटी–छोटी चीजें रोजमर्रा के जीवन में अपना लो जातीं तो जीवन कितना सुखमय हो जाता है। पर मनुष्य अपने में ही इतना मग्न रहता है कि वह ईश्वर को भूलकर भी याद नहीं करता। इसलिये तो इतना दुख

पाता है। स्वामीजी ने ठीक कहा है मन की संकीर्णता ही अधर्म है और मन की उदारता ही धर्म है।

दूसरे दिन हम 5.30 बजे उठे और जल्दी तैयार होकर चाय पीने के लिये आश्रम के बाहर एक छोटी सी दुकान पर गये। वातावरण में मधुक्षरण हो रहा था। वेद का वही श्लोक याद आ गया—

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धव: माध्वीर्न: संतोषधि: मधु संकल्पुतोषसि मधुमात् अस्तु सूर्य पार्थांवं रज: मधु दौरस्तु न पिता मधुमानो वनस्पति मधुमानं अस्तु सूर्य माध्वीगार्वो भवन्तु न: ऊँ मधु: ऊँ मधु: ऊँ मधु:

ऋषि देखते हैं कि हर तरफ वातावरण में शहद रूपी अमृत की वर्षा हो रही है। पहाड़ों से, नदियों से। सिर्फ देखने की दृष्टि होनी चाहिये।

चाय की दुकान पर दो पहाड़ी आदमी बैठे हुये थे। कितनी सादगी है उनके जीवन में! बड़े प्यार से उन्होंने हमें चाय पिलायी। हम वापस आश्रम आये। जल्दी हमने नाश्ता किया और 8 बजे जीप आ गयी। स्वामी सत्वानन्द काफी सारे फूल लेकर हमारे साथ हमें जीप तक छोड़ने आये थे। वे सिर्फ 72 साल के हैं, लम्बे हैं और सीना तान कर चलते है। कितने हँसमुख हैं और श्रीरामकृष्ण और स्वामीजी के बारे में कितनी अच्छी-अच्छी कहानियाँ बताते रहते हैं। उन्होंने हमें मंदिर के लिये फूल दिया। उनसे सीखने के लिये कितनी सारी चीजे हैं। वे सबको अपना लेते है और वे दूसरे के लिये निःस्वार्थ भाव से कर्म करते हैं।

आज हमे सियाही देवी का मंदिर देखने के लिये जाना है। श्यामलदा की तबीयत अच्छी नहीं थी। वे आश्रम में ही रह गये। बाकी हम लोग जीप में चढ़कर रवाना हुए। रास्ता काफी घुमावदार था। पास में गहरी खाई थी और चिनार के वृक्ष जैसे हमें कह रहे थे चरैवति-चरैवति (चलते जाओ)। दूर से चाँदी की दीवार के समान क्या दिख रहा है ? कुमाँयु पर्वत के ऊपर बर्फ जमी है और उस पर सूर्य की किरणें पड़ रही थीं। सच प्रकृति की सुन्दरता का कोई मोल नहीं है। हमने कोसी नदी पार की। रास्ते में थोड़ी चाय पी। ड्राइवर बहुत ही कुशलतापूर्वक गाड़ी चला रहा था। हम अंतिम छोर पर आ गये। बस गाड़ी यहीं तक जाती है। अब हमें अगला रास्ता पैदल जाना था। पहाड़ की चढ़ाई थी। हाथ में हम लोगों ने लकड़ी पकड़ी और ईश्वर का नाम लेकर यात्रा शुरू की। बहुत कठिन चढ़ाई थी। उबड़-खाबड़ पत्थर। पाँव बड़ी समझदारी के साथ रखना पड़ रहा था। जब भी थक जाते थे थोड़ा सुस्ता लेते थे। अंत में हमारा धीरज टूट गया। करीब चढ़ते-चढ़ते 1 घंटा हो गया फिर भी मंदिर का नामों निशान नहीं। जो भी व्यक्ति मिलता रास्ते में हम, उनसे मंदिर की दूरी पूछते थे। इतने में हमारी मामी का पैर फिसल गया एक दम खाई में गिरने ही वाली थी कि हमारे पति ने उनका हाथ पकड़ लिया और खींच कर ऊपर लाये। बाप रे! थोड़ी देर तक हमारी साँसे बंद हो गयी थी। मामी को ज्यादा चोट नहीं लगी थी। फिर चढ़ना शुरू किया। थोड़ी देर के बाद मैं बैठ गयी और मुझे लगा अब मैं नहीं चढ़ पाऊँगी। मैं मन ही मन भगवान से प्रर्थना करने लगी। और जोर-जोर से कहने लगी "माँ सियाही देवी ! न तो दर्शन दे रही हो न ही रास्ता दिखा रही हो। मैं अब चल नहीं सकती।" इतने में एक सुन्दर तितली वहाँ आई। मैंने कहा "देखो ! माँ आ रही है। साथ में एक काला कुत्ता आया और हमारे साथ-साथ चलने लगा जब तक मंदिर नहीं आ गया। माँ का नाम लेते हम चढ़ रहे थे। अरे ! मंदिर दिखाई दे रहा है। आसपास कुछ मकान भी दिखाई दिये। पर सोचिये किस तरह हर छोटी-छोटी चीज के लिये उन्हें नीचे जाना पड़ता होगा। अब माँ का मंदिर आ गया। स्वामी विवेकानन्द जब अलमोड़ा आये थे यहीं पर उन्होंने तपस्या की थी। जगह-जगह पर स्वामीजी की स्मृतियाँ बिखड़ी पड़ी हैं।

माँ का मंदिर एक चबूतरे से घिरा था। चारों तरफ पहाड़ ही पहाड़ थे और बीच में

मंदिर। मंदिर के पुजारी बहुत ही अच्छी तरह से पूजा कर रहे थे। माँ की मूर्ति काले पत्थर की थी हमने दीये की रोशनी में माँ का दर्शन किया। वहीं बैठकर शांति से थोड़ा भजन किया। हमें चावल–दाल प्रसाद में मिले। उतरते समय हम जल्दी–जल्दी उतर गये। लौटते वक्त हमने कोसी गाँव में भोजन किया। ऐसा स्वादिष्ट भोजन जीवन में पहली बार ही किया था। हमने वहाँ आश्रम के लिये कुछ तरकारी और फूल खरीदे।

शाम को करीब 8 बजे हम आश्रम लौटे। 5 बजे हमारा दूसरा प्रोग्राम था। भाभी और मेरी दीदी ने मना कर दिया। सिर्फ मैं, रूपा और मेरे पति तिवारी जी के साथ अल्मोड़ा शहर देखने निकल पड़े। पैदल ही जाना था सबसे पहले हमने निवेदिता हाउस देखा। सिस्टर निवेदिता का नाम मार्गरिट नोबल था वे स्वामीजी की शिष्या थी। भारतवर्ष की महिलाओं के लिये उन्होंने अपना जीवन दान कर दिया था। जब भी वे अल्मोड़ा आती थीं तो यही निवेदिता हाउस जो सफेद रंग का है उसमें रहंती थीं। अब इसे उत्तर प्रदेश सरकार ने ले लिया है। अब आगे बढ़े और एक मकान पर गये जहाँ निवेदिता रहती थी। कितने गंदे तरीके से उस जगह को रखा था। पास में कुछ दुकानें थीं। एक मारवाड़ी परिवार वहीं रहता है। हमारे कहने पर उन्होंने वह कमरा खोल दिया जहाँ निवेदिता रहती हैं। उनकी स्मृतियाँ कमरे में अब तक मौजूद है। तस्वीरें, चाय के प्याले टेबल, कुर्सी सभी कुछ था। हम भावविभोर होकर छू–छू कर देख रहे थे। इतनी महान नारी थी यह सिस्टर निवेदिता! बदले में हमने उन्हें क्या दिया ? कुछ भी नहीं। बाहर एक देवदार का वृक्ष था इसी पेड़ के नीचे स्वामीजी ने निवेदिता को आशीर्वाद दिया था।

अब हम बाजार पार कर रहे थे। हम लाला बदरीशाह के मकान में पहुँचे। स्वामीजी यहीं आकर ठहरे थे। यह बाजार के बीचों बीच है। पत्थर का मकान है सीढ़ियाँ बहुत ऊँची–ऊँची है। रस्सी पकड़कर सावधानी से ऊपर चढ़ना पड़ता है। हमने स्वामीजी का कमरा देखा। सब स्मृतियाँ लुप्त हो गयी थीं। सिर्फ श्रीरामकृष्ण देव और स्वामीजी का चित्र था। कमरा कोई दूसरा व्यवहार कर रहा था। मुझे तो बहुत दुःख हुआ। अगर यही विदेश होता तो वे इस कमरे को कितने सलीके से स्मृति भवन के रूप में रखते! हमारी सरकार इतनी बेखबर और बेजिम्मेदार क्यूं है ? उतरते वक्त हमने देखा घर की महिलायें छत पर बैठकर गेहूँ साफ कर रही थीं।

लाला बदरी शाह बहुत बड़े रईस थे। उन्होंने स्वामीजी को ठीक पहचाना था और बड़े सम्मानपूर्वक अपने मकान में रखा था और उन्होंने स्वामीजी की हर कार्य में सहायता की थी। स्वामीजी जब अमेरिका से सम्मानित होकर लौटे थे तो इसी बाजार से उनका जुलूस निकला था। लोग हर्षोन्मत्त होकर फूलों की वर्षा कर रहे थे। आँखें बन्द कर मैं उसी दृश्य का अनुमान करने लगी।

अब हम एक सरकारी महाविद्यालय के पास से गुजर रहे थे। यहीं पर स्वामीजी ने भाषण दिया था। "कोलंबो से अल्मोड़ा तक" यह विख्यात भाषण कई पुस्तकों में है।

हम थक कर चूर–चूर हो गये थे पर मन में स्वामजी की स्मृतियाँ लेकर आनंद से आश्रम वापस आये। शाम के भोजन के बाद स्वामी सत्वानन्दजी से मिले। उन्होंने हमें हर जगह के विषय में पूछा और नई–नई बातें बतायीं। आज हम जल्दी सो गये।

आज 29 अक्टूबर का दिन है। आज हमें सबेरे कौसानी के लिये निकलना है। अलमोड़ा से कौसानी सिर्फ 53 कि०मी० है। हमें स्वामी सत्वानन्द जी ने बहुत ही प्यार और स्नेह से विदा की। आश्रम में अपनी इच्छानुसार दान देना पड़ता है।

अब हम जीप में बैठकर कौसानी के लिये रवाना हुए। रास्ता बहुत ही सुन्दर था। घना जंगल घुमावदार रास्ता। हम गोल–गोल

घूमकर ऊँचाई पर चढ रहे थे। कौसानी 1800 मीटर की ऊँचाई पर है। शीतकाल में तापमान 2°C हो जाता है। हम सोमेश्वर में थोड़ी देर के लिये रूके। यहाँ पर सुन्दर शिव मंदिर है। हमने उतर कर पूजा की और आगे बढ़े अब हम कौसानी पहुँच गये।

बहुत से लोग यहाँ आये थे। यहाँ से कुमायु हिमालय का असली सौन्दर्य दिखाई देता है। लगता है हाथ बढ़ाकर हम पर्वत को छू सकते है। यह पर्वतमाला 300 कि०मी० तक बर्फ से ढकी हुई दिखाई देती है। ऊपर नीला आकाश बिल्कुल लाल रंग का हो जाता है तो कभी सुनहरा। यहाँ से त्रिशूल, नन्दादेवी, नन्दाघुन्टि, गौरीशंकर, देवी दर्शन, बन्दाकोट और बदरीनाथ के शिखर साफ-साफ देखी। वहाँ पर चित्र भी बना हुआ है। यह हमारे देश का स्वीटजरलैंड है। यहीं पर हमारे हिन्दी के विख्यात कवि सुमित्रानन्दन पंन्त का जन्म हुआ था।

1929 में गाँधीजी भारतव्यापी दौरे पर निकले थे। थकान दूर करने के लिये वे यहाँ पर आये और 107 दिन रहे। कौशानी के हिमपर्वतों के ऊपर सूरज की रोशनी पड़ते देखकर वे मोहित हो गये। गीता पर प्रसिद्ध पुस्तक "अनासक्ति योग" यहीं पर उन्होंने लिखी थी। वे चाय बागान मालिक के कमरे में रूके थे। कालान्तर में श्रीमती सुचेता कृपलानी ने उनकी स्मृति सुरक्षित रखने के लिये उत्तर प्रदेश सरकार से सहायता ली और अब यह गाँधी स्मारक के रूप में है। अन्दर वाचनालय भी है। सामने सुन्दर डहालियाँ फूलों का बगीचा है। स्मारक के चारों तरफ दिशाल वनवृक्ष और हिममालाओं के साथ स्फटिक सा निरभ्र आसमान अनायास ही मन को अगाध आनंद की ओर ले जाता है। यहीं से कोसी नदी निलकती है।

वहाँ से लौटकर हम बैजनाथ मंदिर देखने के लिये गये। बैजनाथ बहुत ही सुन्दर और पुराना मंदिर है। यह पांडवों के समय का है। यही से शिवजी प्रकट होकर बारात लेकर कैलाश की तरफ गये थे। मंदिर 8वीं सदी का है। मंदिर की दीवार पर सुन्दर मूर्त्तियाँ बनी हुई है। पूरे जीवन का दर्शन है। बैजनाथ में स्वयंभू शिवलिंग है अर्थात् शिवलिंग स्वयं ही धरती से प्रकट हुए है। हमारी पवित्र भारतभूमि में 12 स्वयंभू शिवलिंग है। गुजरात में सोमनाथ, उज्जैन में महाकालेश्वर, शैल में मल्लिकार्जुन, बैद्यनाथ पू० महाराष्ट्र में भीमशंकर, दक्षिण में रामेश्वर दारूकावन में नागेश्वर वाराणसी में विश्वेश्वर महाराष्ट्र में त्रयम्बकेश्वर हिमालय में केदारनाथ ये सब ज्योतिर्लिंग है। यहाँ पर सावन सोमवार, शिवरात्रि और मकर संक्रांति में मेला लगता है। पास में नदी का पानी अत्यंत स्वच्छ है वहाँ पर महाशेर मछलियाँ दिखाई देती हैं। दाना डालते ही मछलियों का झुण्ड ऊपर आ जाता है ये मछलियाँ काले रंग की हैं। यहाँ मछली पकड़ना माना है। मंदिर के अन्दर बैठकर हमने शांत मन से पूजा की। यह नदी जो बह रही है उसका नाम गोमती नदी है। मंदिर के पास में बहुत ही सुन्दर पार्वतीजी का मंदिर है। मूर्त्ति काले पत्थरों से बनी है। कलाकारी और सौन्दर्य बस अतुलनीय हैं।

अब हम आगे बढ़े। गोमती नदो के किनारे से जा रहे थे। हमें अब बागेश्वर मंदिर जाना था। यह यहाँ से 19 किलोमीटर दूरी पर है। यहाँ पर गोमती नदी सरयू नदी से मिलती है। इसी संगम पर बागेश्वर का मंदिर है। हमने संगम पर डुबकी लगायी। यह माकण्डेय मुनि की तपोभूमि हे शिव यहाँ पर व्याघ्र के रूप में प्रकट हुए थे। चन्द्रवंशी राजालक्ष्मी के द्वारा 1602 ई० में यह निर्मित की गयी थी। संगम पर मेला लगता है। यहाँ पर 7 सदी से 16वीं सदी तक की सुन्दर-सुन्दर मूर्तियाँ हैं। वहाँ से हम लौटकर ताकुला और कसारा देवी होते हुए वापस आश्रम में लौटे।

आज 30 अक्टूबर है। दिन भी बड़ा अच्छा है। हमने आश्रम के संन्यासियों को धन्यवाद दिया। आश्रम के लिये दान दिया और भावभीनी विदा लेकर मायावती के लिये रवाना हुए। स्वामी सत्वानन्द जी हमें जीप तक छोड़ने आये थे।

हमें बड़े चीना पनवानाला उमिया घाट से लोहाघाट जाना है। पर जाने वक्त हमें जागेश्वर का प्रख्यात शिव मंदिर देखना था। यह अल्मोड़ा से 34 कि०मी० की दूरी पर है। हमें बायीं तरफ के रास्ते 2 कि०मी० दूर जाना है। यहाँ महादुर्गा का मंदिर है और महामृत्युंजय का मंदिर है। यह 6वीं सदी का मंदिर है। बस मंदिर देखने लायक ही है। जो लोग मृत्युशय्या में पड़े रहते है। यहीं के पुजारी जाकर पूजा करने से मृत्यु टल भी सकती है। दूर-दूर से लोग यहाँ आते हैं। शिवलिंग चाँदी की छतरी से ढकी थी। 4-5 पुजारी बैठकर ध्यान पूजादि कर रहे थे। यहाँ लोग मन्नते माँगते हैं और पूरी होने पर चाँदी की छोटी-छोटी छतरियाँ भेंट करते हैं। पूरे भारतवर्ष, पूरी पृथ्वी में सिर्फ एक ही मृत्युजंय का मंदिर है जहाँ दिश्वास और श्रद्धा से मृत्यु को टाला जा सकता है। पूजा करने के बाद मन में प्रशान्ति लेकर हम अपने गंतव्य स्थान की ओर बढ़े.....मायावती।

अब हम लोहाघाट की तरफ बढ़े यहाँ पर बाजार लगता है। हम वहाँ से पिथोड़ागढ़ गये। अरे बापरे यहाँ तो सब गाड़ियाँ रूकी हुई हैं। सामने कोई पहाड़ डायनामाईट से तोड़ा जा रहा। हम सब गर्मी में बेचैन हो रहे थे। करीब दो घंटे के बाद रास्ता खुला और गाड़ी चल पड़ी। हर चिनार और देवदार वृक्षों के बीच घिर गये। वातावरण एकदम शांत हो गया था। सर्पिल रास्तों पर से गाड़ी गुजर रही थी। लग रहा था हम किसी स्वप्निल जगह के लिये जा रहे है। अब मायावती सिर्फ दस किलोमीटर दूरी पर थी। मुख्य दरवाजा आ गया था। किनारों में देवदारु वृक्ष समाधिमग्न खड़े थे। हमारी जीप लकड़ी की दुमंजिले मकान के सामने रूकी। यही पर "प्रबुद्ध भारत" नामक पत्रिका का सम्पादन होता है। हम उतरकर महाराज से मिलने गये। उन्होंने हमें हमारे रहने का स्थान दिखाया। यह भारत में एक मात्र अव्दैत आश्रम है जहाँ पर कोई मूर्तिपूजा नहीं होती। न तो श्रीरामकृष्ण की कोई तस्वीर है न सारदा माँ की।

हमारा अतिथि भवन दुमंजिला है। चारों तरफ जंगलों से घिरा हुआ है। साँस लेने पर भी यहाँ की निस्तब्धता को आघात पहुँचती है। कितना शांत और गंभीर वातावरण है। बिना महसूस किये वर्णन करना मुश्किल है। जैसे सारे देवदार चीनार और ओक के वृक्ष ईश्वर का ध्यान कर रहे हैं। मैं नहाकर जब छत के ऊपर गयी तो मुझे ऐसा लगा कि जैसे मैं इस सारे ब्रह्माण्ड में अकेली हूँ और सृष्टिकर्त्ता जैसे बिल्कुल मेरे नजदीक हैं। मन बरबस ईश्वर की तरफ खींचा चला जाता है। इस आश्रम की नींव स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा से सेवियर दम्पति ने 1998 में डाली। उसके दो वर्ष पश्चात् ही मि०सेव्हियर की मृत्यु हो गयी तो सारा काम श्रीमती सेव्हियर ने स्वामी स्वरूपानन्द और स्वामी विरजानन्द की सहायता से संभाला। यह पहले मैकग्रेगर साहब का चाय बगान था। करीब 100 एकड़ जमीन यह करीब 6500 फीट की ऊँचाई पर है। उनसे खरीद कर सेव्हियर दम्पत्ति ने काफी कड़ी मेहनत की और उसी का फल यह आश्रम है।

हम पास में ही सेव्हियर दम्पत्ति के मकान को देखने गये। वहाँ बड़ा सुन्दर बगीचा है। वहाँ से हम आश्रम में गये। यहाँ फूलों के सुन्दर से सुन्दर पौधें हैं। कई तरह के गुलाब डहालियाँ हैं। चेरी वृक्ष फूलों से लदे हैं। लग रहा था शायद स्वर्ग यहीं उतर आया है। आश्रम भी दुमंजिला है। ऊपर संन्यासी रहते हैं। नीचे का कक्ष स्वामीजी का है। उसमें गलीचा बिछा है कमरे के चारो तरफ किताबों की आलमारियाँ है। स्वामीजी 1900 में जब मायावती आये 3 जनवरी से 18 जनवरी तक यहीं रूके थे। ऊपर अत्यधिक ठंड होने पर नीचे इसी कमरे में आग जलाकर रहते थे fireplace भी वैसे ही पड़ा है। स्वामीजी के स्पर्श से कमरे का वातावरण आध्यात्मिक था अर्थात् मनुष्य के मन में ईश्वर छोड़कर और कोई भावना नहीं आती है। यहाँ पर शाम को धार्मिक पुस्तकों के बारे में प्रवचन

होता है। इस कमरे के पास बाँये हाथ में खाने का कमरा है। करीब 20–25 लोग बैठकर खाना खा सकते है। यहाँ पर जगदीशचन्द्र बसु सिस्टर निवेदिता उकाकूरा (जापानी मनीषी) देशबन्धु चित्तरंजन दास कितने ही बड़े–बड़े लोग आकर रहे थे। अब हम आश्रम से निकलकर दाहिनी तरफ गये। अरे, कुमांयु पर्वत और उसकी चोटियाँ बहुत साफ नजर आ रही हैं। उसी तरफ थोड़ा नीचे उतरकर अस्पताल है जो फूलों से घिरा है।

अब हम आश्रम से निकलकर थोड़ी दूर पर गोशाला देखने गये। यहाँ कई गायें और भैसें हैं। जिनसे आश्रम को दूध सहज मिल जाता है। गोशाले की देखभाल संन्यासी ही करते हैं। गोशाला के पीछे एक नदी थी जो अब सूख गयी है। वहीं स्वामीजी नौका बिहार करते थे।

पास ही में स्वरूपानन्द स्थल है। वे स्वामीजी के शिष्य थे एवं मायावती आश्रम के पहले अध्यक्ष थे। उन्होंने मायावती के लिये इतनी कड़ी मेहनत की कि कम उम्र में ही वे चल बसे। यह स्थल जाली से घिरा है। कहते हैं एक बार जब स्वामी स्वरूपानन्द जब ध्यानमग्न थे तो सामने शेर आ गया। शेर को देखकर भी वे निडर रहे और ध्यान में डटे रहे। शेर चला गया जब मदर सेव्हियर्स को पता लगा तो उन्होंने उनके लिये एक कुटिया बना दी उसके अन्दर फायर प्लेस, टेबल–कुर्सी और एक खाट भी है। वहीं बैठकर स्वामी स्वरूपानन्द लिखते थे। हमने वह कुटिया भी देखी।

स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि उनकी अंतिम इच्छा है कि वे सब काम छोड़कर मायावती में आकर रहें और कुछ पुस्तकें लिखें और बच्चों की तरह सीटी बजाकर खेलें।

यहाँ पर एक निकट के पहाड़ों में एक पहाड़ है धरमगढ़। यह सबसे ऊँचा है और वहाँ से हिमालय का शिखर बहुत सुन्दर दिखाई देता है। इस पहाड़ पर स्वामीजी चढ़े थे और उन्हें वहाँ पर ध्यान भजन करने की अभिलाषा थी। दूसरे दिन हमें धरमगढ़ पहाड़ पर चढ़ना था। हम खूब सबेरे उठ गये अपनी–अपनी लाठी ली और श्यामलदा को महाराज ने "युगनायक विवेकानन्द" का 3रा खंड दिया जिसके लेखक हैं स्वामी गम्भीरानन्द जी। श्यामलदा का शरीर बहुत भारी है फिर भी वे हमारे साथ चल पड़े। हम जंगलों से होकर गुजरते गये। कितनी ही तरह के वृक्ष है यहाँ पर। चढ़ाई काफी थी। हम जहाँ पर थक जाते थे थोड़ा सुस्ता लेते थे। यह करीब मायावती से और 1000 फीट की ऊँचाई पर है। कितनी ही तरह के रंगबिरंगे पक्षी देखे। चढ़ते समय पहले हमने देवी का पीठ स्थान देखा जिसे "मायी की पीठ" कहते है। स्वामीजी ने इसी नाम के आधार पर इस आश्रम का नाम "मायावती" रखा। हम करीब 1½ घंटे के बाद पहाड़ की चोटी पर पहुँचे। वहाँ बैठने की व्यवस्था थी। एक कमरा जालीदार था। वहाँ बैठकर श्यामलदा ने उसी पुस्तक से हिमालय में "स्वामीजी के अंतिम दिन" अध्याय पूरा पढ़ा। और भी लोग थे। वहाँ उस वातावरण में इस पुस्तक का पढ़ना जैसे सोने में सुहागा था, फिर हमने ध्यानजप किया और चारों तरफ दृष्टि डाली। यहाँ से पश्चिम की ओर केदार बद्री और पूर्व की ओर अन्नपूर्णा धवलगिरि और नेपाल के हिमालय की चोटियाँ साफ दिखाई देती हैं। मंत्रमुग्ध होकर हम देखते ही रहे। ऊपर से आश्रम कितना छोटा लग रहा था! हम धीरे–धीरे नीचे उतर आये।

मदर सेव्हियर्स ने यह सम्पत्ति मिशन को 1903 में दान कर दी थी। वे 1914 तक यही रहीं। फिर वे अमेरिका में अपनी बहन को देखने के लिये गयी और 1930 में अपनी देह त्याग दी।

शाम के समय वहाँके महाराज हमें घुमाने ले गये। हमने मिस्टर सेव्हियर्स का समाधि–स्थल को देखा। वह एक पहाड़ी नदी के किनारे है। उन्हें ब्रह्मचारी अपने कंधे पर उठाकर ले गये थे और उनका दाह–संस्कार किया था। स्वामीजी

उन्हें बहुत चाहते थे और उनकी मृत्यु में शोकमग्न हो गये थे। महाराज के साथ अब हम आश्रम की ओर लौटे धीरे–धीरे शाम हो गयी। सूर्यास्त हो चुका था और उसकी गंभीर आवाज निस्तब्धता में गूँज रही थी। संध्या में लौटकर हमने प्रवचन सुना। फिर खाने के लिये गये। खाने की कोई भी असुविधा नहीं है। रोज अति उत्तम और सुस्वादु भोजन मिलता है।

मायावती को देखकर मन हमारा परिपूर्ण हो गया। स्वामीजी ने दो दिन हमें और ठहरने को कहा पर हमें तो आगे "श्यामलाताल" जाना था। सो हम सबेरे 9 बजे "श्यामलाताल" के लिये रवाना हो गये। हमारे साथ सुशीलमहाराज (रामकृष्ण मिशन के साधु और स्वामी विरजानन्द के शिष्य) भी गये। हम भजन गाते–गाते चल पड़े।

पहले के दिनों में गाड़ी घोड़ा कुछ भी नहीं था। स्वामी विरजानन्द दूसरे साथियों के साथ मायावती से श्यामलाताल या अल्मोड़ा पैदल जाया करते थे। सोचिए कितनी मुश्किलों का सामना किया करते थे। हमें करीब 6 घंटे लगे श्यामलाताल पहुँचने में करीब हम 1½ बजे आश्रम पहुँचे आश्रम के करीब ही एक छोटा सा स्वच्छ जल का तालाब है। इसका नाम श्यामलाताल है इसीसे इस जगह का नाम श्यामलाताल पड़ा। बीच में हमें 1½ घंटा एक जगह रुकना पड़ा था क्योंकि पहाड़ काट कर रास्ता चौड़ा किया जा रहा था। यहाँ के लोगों की हालत बहुत दयनीय है न अच्छा पीने का पानी न कोई अच्छा मकान न कोई अस्पताल। बस मजदूरी और खेती का काम करके जीते हैं। आते समय हमने चम्पावत पार किया। वहीं से हमने आश्रम के लिये तरकारियाँ, फल और मिठाई खरीदी। आश्रम पहुँचकर हम ब्रह्मचारी से मिले।

क्योंकि हमने पहले ही उन्हें सूचित किया था कि हम इतने बजे पहुँचेंगे। इसलिये हमारे भोजन की व्यवस्था थी। उन्होंने हमें हमारा कमरा दिखाया। हम अपना सामान रखकर नहा धो कर तुरंत तैयार हो गये और भोजन के लिये गये। आश्रम के सामने बड़े–बड़े पेड़ हैं जिन्हें स्वामी विरजान्दजी ने अपने हाथों से लगाया था। उनका नाम है मैगनोलिया उसमें बड़े–बड़े सुगंध वाले सफेद फूल खिलते हैं। पत्ते मखमली है फूलों की सुगंध से पूरा वातावरण महक उठता है। आश्रम में मैगोलिया फूल लाल रंग के कितने मोहक हैं। संतरे से लेकर आम अमरूद यहाँ तक कि दालचीनी का भी पेड़ आश्रम में है।

हमारा कमरा बड़ा था। 6 लोग आराम से रह सकते थे पर हमारे पति और श्यामलदा मंदिर के पास वाले कमरे में रहने के लिये गये। हमारे कमरे में 8 खिड़कियाँ थीं, एक गुसलखाना था, पानी की कोई कमी नहीं थी, गरम पानी की भी सुव्यवस्था थी। हमारे कमरें के सामने खाली जगह थी वहीं खेती होती है। पास में गेंदा फूलों का बगीचा था। दूर ही कुमायूँ पर्वत दिखाई देता था। शाम को हमने विश्राम किया फिर खेत देखने निकल पड़े। हिमालय पर्वत के पीछे सूर्यास्त हो रहा था और चारों तरफ फूल ही फूल खिले हुए थे। यहाँ चना और दूसरी दालें आलू सभी उगाये जाते हैं। यहाँ की खेती के लिये सिंचाई की उतनी जरूरत नहीं होती है। स्वतः ओस के जल से सिंचाई होती है। चमेली, जूही, कमल, साल्विया, गुलाब, कैमेलिया के फूलों ने आश्रम की सुंदरता में चार चाँद लगा दिये हैं।

इस आश्रम की स्थापना स्वामी विरजानन्दजी ने मदर सेव्हियर की सम्मति से 13 नवम्बर 1918 में की थी। पहाड़ी लोग इस जगह को श्यालाँ बोलते थे उसीसे इसका नाम श्यामलाताल पड़ा। वे उस समय जंगल काट कर एक तम्बू में रहते थे। वहाँ पर एक टूटा मकान था। उस मकान की अवस्था अत्यधिक दयनीय थी। अचानक एक दिन मकान ढह गया उसी समय सीताराम नामक एक व्यक्ति ने [illegible] विरजानन्दजी की खूब सहायता की थी। करीब 1½ साल तक उन्होंने तम्बू में रहकर देखभाल की। 1915 में भी वे तम्बू में ही रहे और पूजा,

पाठ अतिथि नारायण सेवा की। 21 मई 1915 को आश्रम तैयार हुआ। उनकी कड़ी मिहनत और तपस्या के फलस्वरूप यह आश्रम एक तपोभूमि के रूप में खड़ा है। कहते है स्वामी विरजानन्द रोज डेढ़ लाख जाप किया करते थे। कितने ही महीने सिर्फ फल और दूध के बल पर जीते थे।

यह आश्रम दुमंजिला है। बीच में सीढ़ी है जो सीधे मंदिर की ओर जाती है जहाँ पर भगवान श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामीजी की तस्वीरे हैं। दाहिनी ओर मदर सेव्हियर का कमरा। वे स्वामी विरजानन्द जी को अपना पुत्र मानती थीं। जब भी श्यामलाताल आती थीं तो इसी कमरे में रहती थीं। दाहिनी तरफ आफिस है। पीछे की तरफ खाने की जगह है। रसोई घर है। अतिथिशाला 4–5 हैं थोड़ी दूरी पर। सामने छोटा सा अस्पताल है। दाहिने हाथ में दूर जाकर ऊपर गोशाला है। नीचे श्यामलाताल है।

अस्पताल अभी बहुत ही छोटा है उसीको अभी बढ़ाने की सोच रहे हैं। लोगों को लोहाघाट तक जाना पड़ता है। सोच लीजिये इनकी हालत क्या है। हम दूसरे दिन स्वामी विरजानन्दजी का कमरा देखने के लिये गये। बहुत कम लोगों को सहमति मिलती है। कमरे का वातावरण अलग था। पैर पड़ते ही मन शांत हो जाता है। स्वामी विरजानन्द की सुन्दर एक जीवन्त तस्वीर है। उनकी सारी चीजें कमरे में अच्छी तरह से सजा कर रखी गयी हैं। यहाँ तक कि उनकी 'गीता' भी। हमने वहाँ बैठकर ध्यान किया।

शाम को सुशील महाराज हमें 'टनकपुर प्वाईंट' देखाने ले गये। बस थोड़ी चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। वहाँ महाराज बीच में बैठे और हम सब उन्हें घेरकर बैठ गये। उनकी उम्र भी 60 साल की होगी पर बहुत कर्मठ है। वे बहुत कम बोलते हैं, पर हमने उनसे बहुत जिद की तो उन्होंने बोलना शुरू किया। पता नहीं 1–2 घंटा किस तरह से बीत गये कुछ मालूम ही नहीं पड़ा। उन्होंने अपने बारे में, अपनी माता के विषय में, स्वामी विरजानन्द के बारे में हमें बताया। उस जगह से शारदा नदी दिखती है जिसे काली नदी भी कहते हैं। वहीं से नेपाल की सीमा दिखाई देती है। लोग कहते है कि गानसरोवर का पानी इस नदी में आता है। इसी नदी के किनारे लोग दाहसंस्कार करते हैं।

श्यामलाताल से चम्पावत, नानकमाता, गुरूद्वारा और पुण्यगिरि पास में ही है। श्यामलाताल करीब 1525 मीटर ऊँचाई पर बसा है। आश्रम से पानी के लिये एक बड़ा टैंक बनाया गया है जिसमें 16,000 गैलन वर्षा का पानी जमा होता है। बिजली आदि ऊर्जा सूर्य की किरणों से आती है। पास में गोशाला भी है। सुशील महाराज उसकी देखभाल करते हैं। इस कारण आश्रम में दूध की कोई कमी नहीं है।

हमने तीन–चार दिन श्यामलाताल में फूलों के बीच, पहाड़ियों के बीच और खुले आकाश के नीचे बिताये। जी भर कर हमने जप ध्यान किया। मन की सम्पूर्ण शांति के साथ हमने इतना आनंद पाया जिसकी हमें सपने में भी उम्मीद नहीं थी।

अंत में लौटने का समय आ गया। हमने आश्रम और अस्पताल के लिये भगवान से प्रार्थना की और दान दिया। हमने अपने लिये यही प्रार्थना की कि फिर से हमें यहाँ आने का मौका मिले। धनसंपत्ति से आदमी को कभी मन की शांति नहीं मिलती है। अगर शांति चाहिये तो ईश्वर की शरण में जाना है, और इसके लिए सबसे अच्छी जगह है श्यामलाताल मायावती और अल्मोड़ा। मन यहाँ से विदा के लिये मान नहीं रहा था पर सबको अपनी–अपनी कर्मभूमि में युद्ध के लिये लौटना तो, था ही। सो हम टनकपुर के लिये रवाना हुए। वहाँ से मथुरा गये और वहाँ से मुम्बई वापस आ गये।

समाचार एवं सूचनाएँ

पोप प्रायश्चित करेंगे

12 मार्च को पोप जॉन पॉल- II विगत 2000 वर्षों में ईसाइयों द्वारा किये गये दुष्कृत्यों के लिए दैवीय क्षमा-याचना करेंगे। यह दिवस 'लेंट' (चालीसा) का प्रथम रविवार है।

वे प्रचार-प्रसार के क्रम में सद्भावना, प्रेम, शांति, मानवाधिकारों एवं अन्य धर्मों तथा संस्कृतियों के विरुद्ध ईसाइयों के द्वारा किये गये पापाचारों के लिए माफी माँगेंगे।

भारतीय सन्दर्भ में इस विलक्षण कार्य की व्याख्या गोवा में ब्रिटिश शासन के तीन सौ वर्ष पहले से चले आ रहे पुर्तगाली गवर्नरों एवं पादरियों के अत्याचारों के प्रायश्चित के रुप में भी हो सकती है। निस्संदेह, वैटिकन द्वारा प्रकाशित 'नोट्स ऑन द यूकैरिस्टिक सेलेबरेशन' में गोवा को (विश्व के किसी अन्य भाग को नहीं) स्थान दिया गया है। लेन्ट का महीना, जो इस्टर के पहले आता है, ईसाइयों के व्यक्तिगत एवं सामूहिक पर्यवलोकन का समय होता है। श्रद्धालु विगत वर्ष में अपनी गलतियों के लिए क्षमा-याचना करते हैं। ईसा मसीह के जन्म के दो हजार वर्ष होने के कारण इस भेंट का महत्व भी बढ़ गया है।

इसके अलावा पोप भिन्न मतावलम्बियों पर हुए अत्याचारों, धर्मयुद्धों, क्रूस-युद्धों के दौरान की गयी हिंसात्मक कार्रवाइयों, धर्मान्तरण के लिए दिये गये उत्पीड़नों एवं क्राइस्ट की संस्था पर आँच लाने वाले कार्यों-बहिष्करण, उत्पीड़न एवं विभाजन के लिए भी क्षमा-याचना करेंगे।

वैटिकन ने जोर देकर कहा है कि ये क्षमा-याचनाएँ प्रभु के समक्ष की जाएँगी एवं केवल वही माफ कर सकते हैं। पर ये मानव के समक्ष भी हैं, जिनके समक्ष ईसाइयों का उत्तरदायित्व नहीं छिपाया जा सकता। वैसे पोप ने इन पापकर्मों के लिए पहले भी प्रायश्चित किये हैं। भारतीय श्रद्धालुओं के लिए यह ज्ञातव्य हो कि गोवा के अत्याचारों का प्रायश्चित इसके पहले १३ अगस्त १९८५ एवं ३ जून १९९२ को भी किया था।

प्रस्तुति-वसन्त विवेक सागर, छपरा

श्रीमत् स्वामी गहनानंदजी महाराज का छपरा-आगमन

श्रीरामकृष्ण मठ एवं मिशन के उपाध्यक्ष, श्रीमत् स्वामी गहनानंदजी महाराज ने विगत १० से १२ मई तक रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा (बिहार) में अवस्थान किया। उन्होंने १० मई को वार्षिकोत्सव का उद्घाटन किया। इसके पश्चात् '२१ वीं शताब्दी में श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा देवी एवं स्वामी विवेकानंद की प्रासंगिकता' विषय पर वक्तव्य दिया गया। वक्ता थे-रामकृष्ण मिशन, राँची के सचिव, स्वामी शशांकानन्द जी महाराज। उन्होंने स्वामीजी के इस कथन को उद्धृत किया कि 'कलियुग की असली तपस्या सत्य ही है' श्रीरामकृष्ण के अपूर्व चरित्र का वर्णन करते हुए उन्होंने बताया कि ईश्वर प्राप्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य है। फिर, डॉ० उषा वर्मा, वि०वि० आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज एवं रामकृष्ण मठ इलाहाबाद के स्वामी यागात्माजी महाराज ने क्रमशः माँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्द की प्रासंगिकता पर प्रेरक प्रवचन दिये। श्रीमत् स्वामी गहनानन्दजी ने अंत में आशीर्वचन दिये। डॉ० रामानंद शर्मा ने धन्यवाद ज्ञापन किया। गुरुवार, दिनांक ११ मई को स्वामीजी ने दीक्षार्थियों को दीक्षा प्रदान करने की कृपा की। ११ मई एवं १२ मई को स्वामी शशांकानंदजी ने रामकृष्णायन एवं स्वामी त्यागत्मानंदजी ने रामचरितमानस पर बड़े ही हियहारी एवं प्रभावपूर्ण प्रवचन दिये।

मुख्य बात रही, रामकृष्ण भावधारा की प्रासंगिकता पर वक्तव्य के क्रम में सत्यान्वेषण एवं राष्ट्रभक्ति पर बल दिया जाना। वक्ताओं ने लादू महाराज की इस जन्मस्थली के महत्व पर भी जोर दिया।

१२ मई को इस अमृतमय समारोह का समापन हुआ। निश्चय ही महाराज का आगमन छपरावासियों के लिए आध्यात्मिक रूप से अत्यंत आह्लादकारी रहा। आश्रम के सचिव डॉ० केदारनाथ लाभ ने नित्य स्वागत भाषण किया एवं अंतिम दिन धन्यवाद ज्ञापन किया।

प्रस्तुति-वसंत विवेक सागर, छपरा

श्रीरामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर

छपरा--८४१ ३०१ (बिहार)

स्वामी विवेकानन्द प्रतिमा-स्थापन

नम्र निवेदन

प्रिय महोदय / महोदया,

आपको यह सूचित करते हुए हमें परम प्रसन्नता हो रही है कि पश्चिमी जगत में भारतीय धर्म और अध्यात्म की विजय पताका लहराने के उपरान्त दिग्विजयी स्वामी विवेकानन्द के भारत प्रत्यागमन के शताब्दी-महोत्सव वर्ष की स्मृति में स्वामी विवेकानन्द की आदमकद कांस्य-प्रतिमा की स्थापना करने का शुभ सकल्प छपरा के नागरिकों ने लिया है। छपरा स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी अद्‌भुतानन्द (लाटू महाराज) के जन्म-जिला का मुख्यालय है।

मनुष्य-निर्माण, चरित्रगठन, सामाजिक न्याय, सर्वधर्म समभाव एवं भारत के पुनर्निर्माण के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा एक विद्युत-तरंग का कार्य करेगी एवं वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणा का प्रकाशपुंज सिद्ध होगी— यह निर्विवाद है।

अतएव, आपसे हमारा नम्र निवेदन है कि इस याज्ञिक कार्य में उदारतापूर्वक दान देकर हमारे विनम्र प्रयास का सहभागी बनने की कृपा करें। इस महनीय कार्य में बड़ से बड़ा दान भी अल्प है और छोटे से छोटा दान भी महत्तम है।

स्वामीजी की कृपा आप पर निरन्तर बरसे—यही प्रार्थना है।

प्रेम और शुभकामनाओं सहित—

स्वामी विवेकानन्द चरणाश्रित

आपका

(डॉ० केदारनाथ लाभ)

सचिव

चेक या ड्राफ्ट रामकृष्ण अद्‌भुतानन्द आश्रम, छपरा (बिहार) के नाम से भेजने की कृपा करें। नकद रुपये मनीआर्डर से भेजे जा सकते हैं।

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी. १४-८३

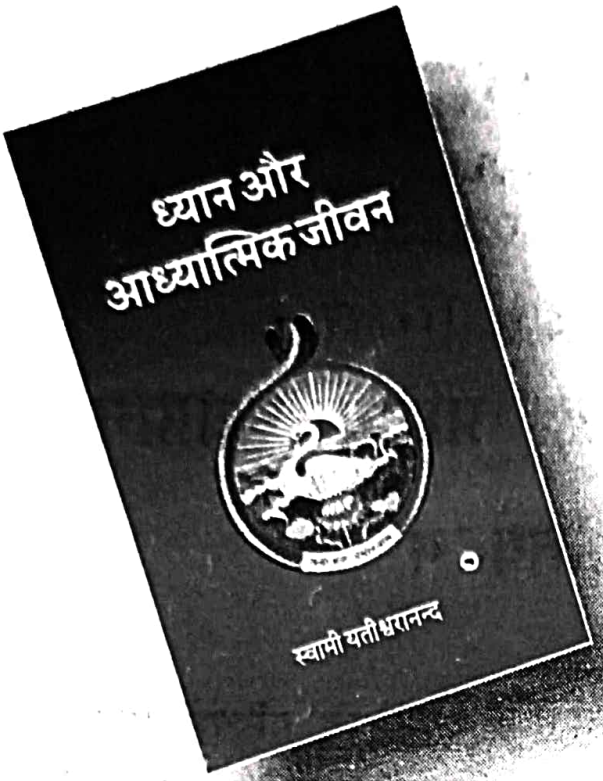

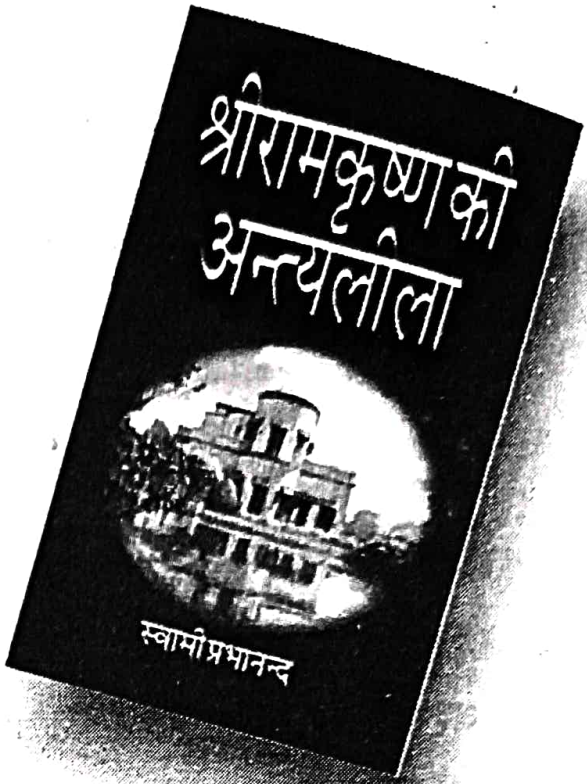

कुछ संग्राह्य पुस्तकें

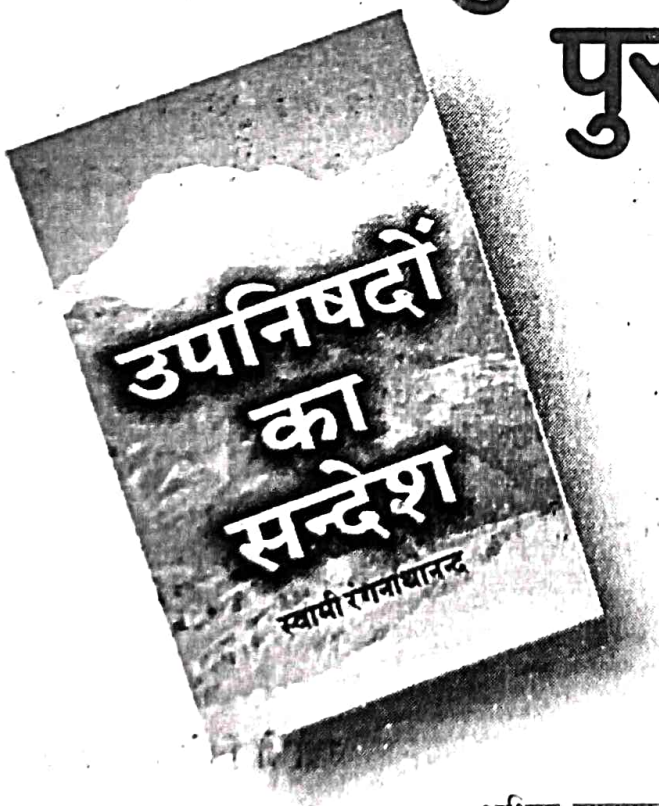

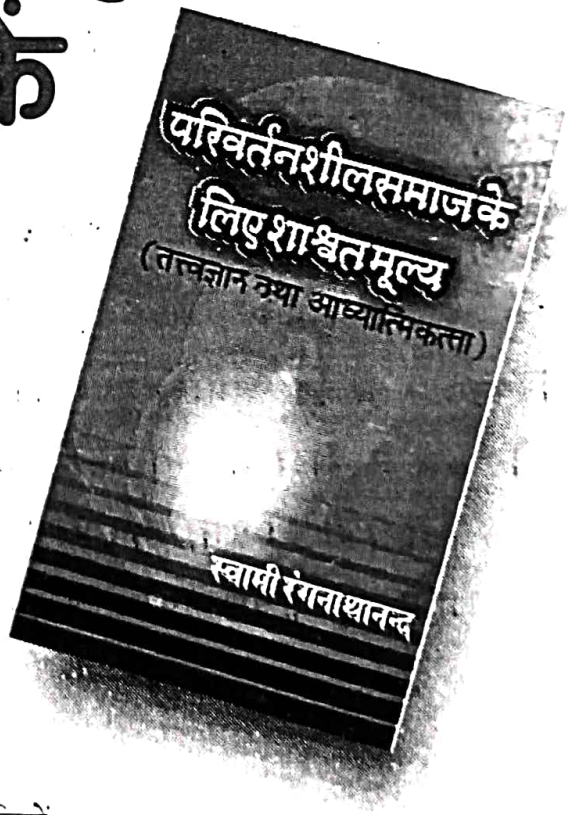

अधिक जानकारी के लिए लिखें :

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिण्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।
सम्पादक : डॉ केदारनाथ लाभ